नियमसार महामण्डल विधान

(प्राकृत की मूल गाथाओं एवं तात्पर्यवृत्ति में समागत कलशों सहित)

रचयिता :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी., डी.-लिट्

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : 3 हजार
(21 मई, 2017)
प्रथम संस्करण : 1 हजार (गाथा और कलश सहित)
(5 सितम्बर 2017)
अनन्त चतुर्दशी

: **कुल 4 हजार**

मूल्य : **पच्चीस रुपये**
गाथा और
कलश सहित : **तीस रुपये**

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

अनुक्रमणिका

●	मंगलाचरण	1
1.	श्री नियमसार पूजन	3
2.	जीवाधिकार और अजीवाधिकार पूजन	8
3.	शुद्धभाव अधिकार एवं व्यवहार चारित्र अधिकार पूजन	46
4.	परमार्थप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान एवं परमालोचना अधिकार पूजन	87
5.	शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त, परमसमाधि एवं परमभक्ति अधिकार पूजन	138
6.	निश्चयपरमावश्यक एवं शुद्धोपयोग अधिकार पूजन	175
●	महा जयमाला	227
●	नियमसार-स्तुति	230

प्रकाशकीय

समयसार महामण्डल विधान और प्रवचनसार महामण्डल विधान की अपार सफलता के पश्चात् तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की लेखनी से प्रसूत यह नियमसार महामण्डल विधान का परिवर्धित संस्करण पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। अब आप इस कृति के माध्यम से विधान के साथ-साथ प्राकृत की मूल गाथाओं एवं तात्पर्यवृत्ति में समागत कलशों का रसास्वादन भी कर सकेंगे।

डॉ. भारिल्ल गद्य लेखन के क्षेत्र में तो सिरमौर थे ही, पश्चाताप खण्डकाव्य व वैराग्य महाकाव्य के प्रणयन के पश्चात् पद्य लेखन और अब विधानों की अनवरत शृँखला तैयार कर इस विधा में भी सिद्धहस्त बनकर उभरे हैं।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि ८२ वर्ष की इस वय में भी आप अस्वस्थता के बावजूद कलम का साथ नहीं छोड़ते। विगत दिनों आपकी रीढ़ की हड्डी का ऑपरेशन होना था, असह्य वेदना थी, फिर भी उस काल में आपने प्रवचनसार महामण्डल विधान का सृजन कर अपने शुभचिन्तकों को भी चकित कर दिया। इस ढलती उम्र में इतनी सक्रियता और वह भी साहित्य के क्षेत्र में विरलों में ही देखने को मिलती है।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द की रचनाओं से आपका विशेष लगाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, तभी आपने समयसार की ज्ञायकभावप्रबोधिनी, प्रवचनसार की ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी तथा नियमसार की आत्मप्रबोधिनी हिन्दी टीका तो लिखी ही, साथ ही समयसार अनुशीलन पांच भागों में प्रवचनसार अनुशीलन तीन भागों में व नियमसार अनुशीलन तीन भागों में, लिखकर अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय को अपनी लेखनी का विषय बनाया। इसके साथ ही समयसार का सार तथा प्रवचनसार का सार लिखकर अध्यात्म प्रेमियों को आचार्यकुन्दकुन्द का हार्द समझना आसान कर दिया।

आपकी महत्वपूर्ण कृतियाँ धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय, बारह भावना : एक अनुशीलन, चैतन्यचमत्कार, निमित्तोपादान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोतस्व, शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर, शाकाहार : जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में, आत्मा ही है शरण, गोम्मटेश्वर बाहुबली और परमभावप्रकाशक नयचक्र आदि प्रमुख हैं।

इन सब कृतियों ने जैनसमाज एवं हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। आपके लिखे साहित्य की अबतक आठ भाषाओं में ४० लाख से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने अबतक लगभग ६ हजार पृष्ठ लिखे हैं, जो प्रकाशित हो चुके हैं।

अब तक उनके साहित्य पर तीन छात्रों ने शोधकार्य किया है – जिनमें डॉ. महावीरप्रसाद जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' विषय पर और डॉ. सीमा जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन' विषय पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से तथा डॉ. राजेन्द्र सांगावे द्वारा मद्रास विश्वविद्यालय से 'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन' विषय पर पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है।

इसके साथ ही अरुणकुमार जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य', नीतू चौधरी द्वारा 'शिक्षा शास्त्री परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन', ममता गुप्ता द्वारा 'धर्म के दशलक्षण : एक अनुशीलन' तथा शिखरचन्द जैन ने 'डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व' विषय पर लघु शोध प्रबन्ध लिखे हैं जो आपके साहित्यिक अवदान के जीवन्त दस्तावेज हैं।

समयसार विधान, प्रवचनसार विधान व नियमसार विधान के पश्चात् पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड़ विधान भी आपकी लेखनी के विषय बनें – हम ऐसी आशा करते हैं।

आप स्वस्थ रहें, दीर्घायु को प्राप्त हों और नित नूतन सृजन कर हम सबका इसी प्रकार मार्ग प्रशस्त करते रहें – यही पवित्र भावना है।

पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने श्रमपूर्वक उत्थानिका व मंत्र बनाने तथा प्रूफ रीडिंग का कार्य किया है। आपके उक्त कार्य में संजय शास्त्री व अच्युतकान्त का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अतः हम आप तीनों के आभारी हैं।

सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्द शर्मा तथा आकर्षक मुखपृष्ठ और प्रकाशन के लिए श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देते हैं।

हमें विश्वास है कि इस विधान के निमित्त से यह विधान करने वाले को सम्पूर्ण नियमसार की विषयवस्तु का सहज ही स्वाध्याय होगा।

वे इसमें वर्णित अपनी शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर उसके आश्रय से अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें – इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

९ अगस्त २०१७ ई. **– ब्र. यशपाल जैन**
प्रकाशन मंत्री

अपनी बात

समयसार विधान और प्रवचनसार विधान – इन दोनों विधानों की आशातीत सफलता के बाद नियमसार पर विधान लिखने की माँग जोर पकड़ने लगी। जहाँ जाते, वहीं लोग नियमसार पर विधान लिखने का आग्रह करने लगते।

अध्यात्मप्रेमी भाई-बहिनों में नियमसार की महिमा समयसार से भी अधिक है। गुरुदेवश्री कानजीस्वामी भी नियमसार की प्रशंसा करते अघाते नहीं थे।

मेरे हृदय में भी नियमसार बहुत गहराई से पैठा है; पर मुझे लगता था कि एक तो इसमें बारह अधिकार हैं; अतः कम से कम १३ तो पूजनें लिखनी होगी और कलश भी बहुत हैं। साथ में अन्य ग्रन्थों से उधृत कलश भी है। इसप्रकार यह विधान लम्बा हो जायेगा।

इतने बड़े विधान लिखने में मुझे तो कोई कठिनाई नहीं थी; परन्तु लम्बा विधान, विधान करने वालों को बहुत भारी पड़ता है। अतः वे चाहते हैं कि विधान छोटा ही होना चाहिये।

फिर एक उपाय सूझा कि यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक अधिकार की स्वतंत्र पूजन बनाई जाये। क्यों न छह पूजनों में १२ अध्याय समेट लिये जायें। यदि ऐसा किया जाय तो विधान लम्बा नहीं होगा।

इसप्रकार यह विधान लिखना आरंभ हो गया। मुझे यह भी आशंका थी कि पूजन के अष्टकों में बार-बार बहुत पुनरावृत्ति होती है। कोई नया प्रमेय नहीं आ पाता। पर नियमसार विधान लिखने पर ऐसी कोई समस्या नहीं आई।

मेरे इन विधानों में सहज ही एक बात आ गई है कि इनमें कहीं भी लौकिक कामना को कोई स्थान नहीं मिला है। यदि कहीं कोई कामना की गई है तो वह एकमात्र मुक्ति की ही कामना की गई है और पूजन का फल भी अन्ततः मुक्ति की प्राप्ति ही बताया गया है।

यद्यपि शुभभाव रूप व्यवहार भक्ति से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती; तथापि शुद्धभावरूप निश्चय भक्ति तो मुक्ति का कारण है ही।

यद्यपि कोई भी कामना ठीक नहीं होती; तथापि सांसारिक भोगों की कामना या सांसारिक कामना से बचने के लिये तो मुक्ति की कामना को कथंचित् ठीक कहा ही जाता है।

इसमें न तो कहीं स्वर्ग की कामना की गई है और न स्वर्ग का लोभ दिया गया है। जहाँ तक संभव हुआ कोशिश की गई है कि नियमसार की विषयवस्तु का स्वरूप ही स्पष्ट हो। जयमालाओं में अधिकारों में समागत मुख्य बिन्दुओं को ही स्पष्ट किया गया है।

वस्तुस्वरूप न समझने वाले और कुछ प्राप्ति की कामना रखने वाले विषय लौलुपी जीवों को इसमें कुछ रूखापन लगे तो लगे; पर मैं उनके लिये क्या कर सकता हूँ? मैं उनके अन्तर में विद्यमान मोह को पुष्ट करके उन्हें संसार सागर में गहरे डूब जाने के लिये प्रोत्साहित नहीं कर सकता।

नियमसार में तो एकमात्र यही बताया गया है। त्रिकाली ध्रुव आत्मा कारण परमात्मा ही मैं हूँ; उसी में अपनापन स्थापित करना धर्म है, उसी में जमना-रमना धर्म है; मेरी अन्तरंग रुचि भी उसी में है। अतः मेरे लेखन में तो यहाँ-वहाँ सर्वत्र वही उभरकर आया है।

नियमसार के सभी अधिकारों में निश्चयनय की मुख्यता से कथन किया गया है और वीतरागी सन्तों के प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित्त, भक्ति, समाधि - सभी को निश्चयनय से एकमात्र अपने आत्मा के ध्यानरूप ही बताया गया है।

यद्यपि यथास्थान व्यवहार का भी निरूपण है, पर उपेक्षापूर्वक ही है। अजीव अधिकार में तो अजीव का निरूपण करते हुये आचार्यदेव यहाँ तक कहते हैं कि अजीव के सन्दर्भ में विशेष जानना हो तो करणानुयोग के ग्रंथों से जान लेना, यहाँ अध्यात्म में अन्तराय जानकर विशेष वर्णन से विराम लेते हैं।

सभी आत्मार्थी भाई-बहिन इसका भरपूर लाभ लें - इस मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

१२ मई २०१७ ई. **- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ)	१५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. महावीरप्रसाद जैन	३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन – डॉ. सीमा जैन	२५.००
४. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य – अरुणकुमार जैन	१२.००
५. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन – अखिल जैन बंसल	२५.००
६. गुरु की दृष्टि में शिष्य	५.००
७. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल	५.००
८. बढ़ते कदम – डॉ. शुद्धात्मप्रभा जैन	१०.००

प्रकाशनाधीन

९. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन – डॉ. राजेन्द्र सांगावे

१०. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन – नीतू चौधरी

११. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व – शिखरचन्द जैन

१२. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन – ममता गुप्ता

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

१.	श्री चम्पालाल अजयकुमारजी जैन, ललितपुर	२,१००
२.	पं. ऋषभकुमार जैन एवं संजीव जैन, दिल्ली	१,५००
३.	श्रीमती रंजना जैन हस्ते धनप्रसादजी जैन, पिपरिया	१,१०१
४.	श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई) ध.प. अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा	१,१००
५.	श्रीमती भूरीबेन डूँगसीभाई मारु, दादर-मुम्बई	१,१००
६.	श्रीमती कंचनबाई जैन हस्ते श्री नरेशजी जैन, छबड़ा, बांरा	१,०००
७.	श्री सुरेश शास्त्री, घोड़ा-डागरी	१,०००
८.	श्री विमलकुमारजी जैन, अशोकनगर	१,०००
९.	श्रीमती प्रतिभा राजेन्द्रकुमारजी जैन, बांदा	१,०००
१०.	श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन, कोटा	१,०००
११.	श्रीमती नीता आनन्दकुमारजी बरया, ललितपुर	१,०००
१२.	श्रीमती शशि (कल्पना) ध.प. स्व. श्री अशोककुमारजी जैन, ललितपुर	१,०००
१३.	श्रीमती मीना ध.प. राजकुमारजी इमलया, ललितपुर	१,०००
१४.	ब्रिगेडियर वीरेन्द्र पाटनी, हैदराबाद	१,०००
१५.	गुप्तदान हस्ते कौशल्या देवी जैन, जयपुर	१,०००
१६.	किश प्रमेशराम भैया, दादर-मुम्बई	१,०००
१७.	श्री भानुकुमारजी मोदी, चन्देरी	१,०००
१८.	श्री प्रकाशचन्दजी जैन, प्रागपुर	१,०००
१९.	श्री प्रदीपजी गंगवाल, औरंगाबाद	१,०००
२०.	श्री विलासजी पाटनी, औरंगाबाद	१,०००
२१.	श्री अनिलजी दोंडल, औरंगाबाद	१,०००
	कुल योग	**२२,९०१**

नियमसार महामण्डल विधान

मंगलाचरण

(अडिल्ल[१])

पुण्य-पाप से पार अनघ यह आतमा।
और ज्ञानमय निज कारणपरमातमा।।
यह परमतत्त्व परमारथ अक्षय आतमा।
निर्विकार निर्ग्रन्थ अलौकिक आतमा।। १ ।।

इसी त्रिकाली ध्रुव आतम को जानना।
अज अविनाशी आतम को पहिचानना।।
और इसी में जमना-रमना धर्म है।
अन्य न कुछ बस यही धर्म का मर्म है।। २ ।।

इसी एक में अपनापन सम्यक्त्व है।
इसी एक का ज्ञान-ध्यान चारित्र है।।
इसको ही नित हितकारक पहिचानिये।
इसमें ही सब धर्म समाहित जानिये।। ३ ।।

---

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? ..... की धुन पर गायें।

यही नियम का सार शेष संसार है।
आतमहित का एकमात्र आधार है।।
इसे जानकर इसमें अपनापन करो।
इसे छोड़कर सबसे अपनापन तजो।। ४ ।।

इसके आराधन से सब अर्हत् बने।
सभी सिद्ध भी इसका आराधन करें।।
सभी साधुगण इसका ही साधन करें।
सभी मुमुक्षु इसका आराधन करें।। ५ ।।

यही एक आराध्य आतमा जानिये।
एकमात्र प्रतिपाद्य इसी को मानिये।।
यह ही सबकुछ और न कुछ आराध्य है।
एकमात्र यह निज आतम ही साध्य है।। ६ ।।

निजकारण परमातम की कर साधना।
बने कार्यपरमातम जो भव्यातमा।।
उन्हें नमन कर उनसा बनने के लिए।
करूँ निरंतर निज आतम की साधना।। ७ ।।

इसके अनुशीलन अर चिंतन-मनन से।
मिला अलौकिक लाभ न उसकी होड़ है।।
इसकी पूजन करें सभी जन चाव से।
परमागम में नियमसार बेजोड़ है।। ८ ।।

१

नियमसार पूजन

स्थापना

(रोला)

निज आतम श्रद्धान नियम से करन योग्य है।
निज आतम का ज्ञान नियम से करन योग्य है।।
निज आतम का ध्यान नियम से करन योग्य है।
दर्शन–ज्ञान–चरित्र नियम से धरन योग्य है ।। १।।

निज आतम का ज्ञान ध्यान श्रद्धान धरम है।
एकमात्र निश्चय रत्नत्रय परम धरम है।।
मिथ्यादर्शन ज्ञान चरित इकदम असार है।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरित बस नियमसार है ।। २।।

(दोहा)

अपने में ही नित मगन परिपूरण निर्ग्रन्थ।
कुन्दकुन्द ने स्वयं के लिये लिखा यह ग्रन्थ।। ३।।
इसकी महिमा अगम है अद्‌भुत अपरंपार।
जो जाने वे भव्यजन हो जावें भवपार।। ४।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

अरे हिमगिरि का सहज समीर और यह शीतल निर्मल नीर।
खूब मन भर के पिया परन्तु शान्त न हुई तृषा की पीर।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

जेठ की दोपहरी सा ताप तप रहा वन–उपवन में आज।
मलयगिरि का चन्दन हे प्रभो! मिटा पाया न वह संताप।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अरे यह आतमराम अखण्ड सदा अक्षत अविनाशी तत्त्व।
किन्तु क्षत–विक्षत यह पर्याय न कर पाई इसमें अपनत्व।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

सुगन्धित सुमनों का यह पुंज नहीं है इसमें सुख की गंध।
और सुख का अटूट भंडार आतमा होता अरस–अगंध।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

न कर सके अरे क्षुधा को शान्त विविध मनमोहक यह पकवान।
आतमा का आश्रय सुख शान्ति और देता आनन्द महान।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

अरे दीपक यह ज्ञान प्रतीक न दे सका हमको ज्ञानप्रकाश।
आतमा के अनुभव का दीप सभी को देता दिव्यप्रकाश।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

सुगन्धित दश द्रव्यों से बनी दिव्य यह मनहर धूप दशांग।
न इसमें रंच मिली सुख गन्ध आतमा सुखमय है सर्वांग।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

पुण्य फल भोगे हैं भरपूर शान्ति न मिली अभी तक रंच।
न जीवन सफल हुआ निर्भ्रान्त भ्रान्ति न मिटी अभी तक रंच।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

चढ़ाये विविध द्रव्यमय अर्घ्य उल्लसित भावों से सर्वांग।
अनर्घ्यपद मिला न अब तक और न आया अबतक भव का अन्त ।।
मुक्ति मारग का यह सोपान समाया इसमें आतमराम।
सभी जिनशासन का यह सार अरे यह नियमसार अभिराम।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनियमसारपरमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(कुण्डलिया)

आतमज्ञानी सन्त हैं अन्तर में लवलीन।
कुन्दकुन्द आचार्य श्री परिपूरण स्वाधीन।।
परिपूरण स्वाधीन आतमा में ही रमते।
चितविचलित न होंय आतमा में ही जमते।।
नित आतम अभ्यास निरन्तर आतमध्यानी।
आतम के अनुभवी सन्त हैं आतमज्ञानी।। १ ।।

(रेखता)

अरे यह नियमसार गंभीर साधुचर्या का ग्रन्थ महान।
स्वयं के लिये स्वयं ने दिया परम निश्चय का यह वरदान।।
अरे अत्यन्त धीर गंभीर संत अन्तर का तरल प्रवाह।
और अन्तर्बल का उद्दाम परमपौरुष का प्रबल प्रवाह।। २ ।।
नहीं है रंचमात्र उद्वेग किन्तु निर्मल भावों का वेग।
उबलते भावों का तूफान नहीं है उनमें कोई उफान।।
विविध भावों के बिंब महान प्रतिक्रमण एवं प्रत्याख्यान।
भावना भक्ति और समाधि विषय पर हुआ विशद व्याख्यान।। ३ ।।

नियम से करने के जो योग्य ज्ञान–दर्शन–चारित्र महान।
नियम हैं नियमसार के गेय और इनकी सम्यक् पहिचान।।
कराना एकमात्र उद्देश्य रहा है नियमसार का ध्येय।
त्रिकाली ध्रुव की धुन दिनरात कराना है पावन उद्देश्य।। ४ ।।

मुनीवर पद्मप्रभमलधारि परम वैरागी सन्त महान।
उन्होंने तात्पर्यवृत्ती लिखी है सरस शुद्ध अभिराम।।
उन्होंने स्वयं लिखे हैं कलश और उद्धृत भी किये अनेक।
विरागी भावों से भरपूर परम आध्यात्मिक हैं प्रत्येक।। ५ ।।

परम दुर्लभ है जो अन्यत्र अनोखी विषयवस्तु अभिराम।
कारण नियम शुद्धपर्याय कार्य है रत्नत्रय परिणाम।।
अनादि–अनन्त त्रिकाली शुद्ध रही है कारण शुधपर्याय।
कारण नियम रूप ध्रुवभाव रही है कारण शुधपर्याय।। ६ ।।

सभी को समझाते आचार्य यदि मिल जावे अद्भुत निधि।
गुप्त रहकर उसका आनन्द प्राप्त करना ही है सब विधि।।
अरे तुम यश बटोरना नहीं, नहीं करना उसका व्यापार।
अरे यह अद्भुत है उपलब्धि इसे पा हो जावो भव पार।। ७ ।।

विभिन्न रुचि के हैं जग में लोग किसी से करना नहीं विवाद।
तत्त्वचर्चा का नहीं निषेध व्यर्थ ही उचित नहीं संवाद।।
स्वयं को जानो मानो जमो यही मुक्ती का एक उपाय।
उलझना नहीं किसी से ठीक स्वयं के लिये करो स्वाध्याय।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री नियमसारपरमागमाय जयमाला-पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

नियमसारजी शास्त्र है परमागम का सार।
इसके चिन्तन मनन से हो जावें भव पार।। ९ ।।
इसकी पूजन भक्ति से नशें विकारी भाव।
वीतरागता उदित हो प्रगटे आत्मस्वभाव।। १० ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

२

जीवाधिकार और अजीवाधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

चेतन लक्षण जीव सब शेष अचेतन द्रव्य।
इन अधिकारों में दिया इन सब पर वक्तव्य।। १।।

मूर्तीक पुद्गल दरव शेष अमूर्तिक जान।
चेतन और अमूर्तिक आतम की पहिचान।। २।।

इनके भेद-प्रभेद सब समझाये स्वाधीन।
अपने-अपने में रहें न पर के कोइ अधीन।। ३।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकारौ अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकारौ अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकारौ अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

संत मानस सम निर्मल नीर तृषा की क्षणिक मिटावे पीर।
आतमा के दर्शन का नीर भेज दे भव सागर के तीर।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। १।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

अरे यह शीतल मलय समीर मिटा न पाया रवि संताप।
आतमा का यह निर्मल ध्यान मिटा देता है भव का ताप।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

धवल उज्ज्वल अखण्ड अक्षत दिला पाये न अक्षय तत्त्व।
अरे आतम के दर्शन-ज्ञान दिला देते हैं आतम तत्त्व।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

सुगंधित पुष्पों की यह गंध बना देती जग को कामांध।
आतमा के अनुभव की गंध दिलावे आत्मीक आनन्द।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

क्षुधा को उत्तेजित करते मधुर मीठे-मीठे पकवान।
आतमा का मधुरिम संगीत आतमा को कर देता शान्त।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

न घर के अन्धकार का नाश अभी तक कर पाया यह दीप।
प्रकाशित करता लोकालोक अरे आतम अनुभव का दीप।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

अनन्त जीवों का होय विनाश अग्नि में खेने से यह धूप।
अनन्त कर्मों का करती नाश आत्मा के अनुभव की धूप।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

अभी तक पुण्य-पाप के फल सभी ने भोगे हैं भरपूर।
आत्मा के अनुभव से नाथ चले जावेंगे भव से दूर।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

जगत के मूल्यवान सब द्रव्य मिले तब बने अमोलक अर्घ्य।
स्वयं में जमे-रमे तो मिले परम पद अनुपम और अनर्घ्य।।
अरे यह जीवाजीव अधिकार विवेचन है अति ही गंभीर।
इसे समझो गहराई से मिटेगी इससे भव की पीर।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीव-अजीवतत्त्वप्ररूपक-जीवाजीवाधिकाराभ्यां अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावली
।। जीव अधिकार ।।

(इस विधान में सर्वत्र आचार्य कुन्दकुन्ददेव की गाथाओं का, टीकाकार मुनिश्री पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका में समागत कलशों का एवं अन्य उद्धृत कलशों का डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कृत पद्यानुवाद दिया गया है।)

सर्वप्रथम **श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव तात्पर्यवृत्ति टीका** के मंगलाचरण में देव-शास्त्र-गुरु की वन्दना तीन छन्दों में करते हैं -

(हरिगीत)

जो मोह में मेरे सदृश हैं मुग्ध वश में काम के।
आपके होते हुए सुगतादि को मैं क्यों नमूँ?
वागीश गिरधर शिव सुगत कुछ भी कहो या न कहो।
जितभवी जिनवरदेव जो उनके चरण में मैं नमूँ।। १ ।।

(दोहा)

श्री जिनवर का मुखकमल जिसका वाहन दिव्य।
उभयनयों से वाच्य जो वह ध्वनि परम पवित्र।। २ ।।

(हरिगीत)

सिद्धान्तलक्ष्मी के पती श्री सिद्धसेन यतीन्द्र को।
तर्काम्बुजों के सूर्य श्री अकलंकदेव मुनीन्द्र को।।

(मालिनी)

त्वयि सति परमात्मन्मादृशान्मोहमुग्धान्
कथमतनुवशत्वान्बुद्धकेशान्यजेऽहम्।
सुगतमगधरं वा वागधीशं शिवं वा
जितभवमभिवन्दे भासुरं श्रीजिनं वा।। १ ।।

(अनुष्टुप्)

वाचं वाचंयमीन्द्राणां वक्त्रवारिजवाहनम्।
वन्दे नयद्वयायत्तवाच्यसर्वस्वपद्धतिम्।। २ ।।

शब्दसागर चन्द्रमा श्री पूज्यपाद यतीन्द्र को।
वन्दन करूँ कर जोड़कर श्री वीरनन्दि व्रतीन्द्र को।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १ ।।

अब, टीकाकार इस शास्त्र की टीका लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं –

(दोहा)

भव्यों का भव अन्त हो निज आतम की शुद्धि।
नियमसार की तात्पर्य वृत्ति कहूँ विशुद्ध।। ४ ।।

ॐ ह्रीं तात्पर्यवृत्ति-प्रतिज्ञावाक्ययुक्त श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। २ ।।

अब, टीकाकार आगामी छन्दों में अपनी लघुता प्रगट करते हैं –

(दोहा)

गुणधर गणधर से रचित श्रुतधर की सन्तान।
परमागम का कथन हम कैसे करें बखान।। ५ ।।

परमागम की पुष्ट रुचि प्रेरित करे अनल्प।
इसीलिये यह लिख रहे और न कोई विकल्प।। ६ ।।

ॐ ह्रीं तात्पर्यवृत्तिकर्तुः स्वलघुतानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।। ३ ।।

(शालिनी)

सिद्धान्तोद्धश्रीधवं सिद्धसेनं तर्काब्जार्कं भट्टपूर्वाकलंकम्।
शब्दाब्धीन्दुं पूज्यपादं च वन्दे तद्विद्याढ्यं वीरनन्दिं व्रतीन्द्रम्।। ३ ।।

(अनुष्टुप्)

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये स्वात्मनः पुनः।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसंज्ञिकाम्।। ४ ।।

(आर्या)

गुणधरगणधररचितं श्रुतधरसन्तानतस्तु सुव्यक्तम्।
परमागमार्थसार्थं वक्तुममुं के वयं मन्दाः।। ५ ।।

(अनुष्टुप्)

अस्माकं मानसान्युच्चैः प्रेरितानि पुनः पुनः।
परमागमसारस्य रुच्या मांसलयाऽधुना।। ६ ।।

अब, ग्रन्थ में प्रतिपादित विषयवस्तु की चर्चा करते हैं –

(दोहा)

सात तत्त्व छह द्रव्य अर नवार्थ प्रत्याख्यान।
पाँचों अस्तीकाय का किया गया व्याख्यान।। ७ ।।

ॐ ह्रीं ग्रन्थस्य विषयवस्तुनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।४।।

अब, **आचार्य कुन्दकुन्ददेव विरचित नियमसार** की मूल गाथायें प्रारम्भ होती हैं; सर्वप्रथम मंगलाचरण की गाथा में वीतरागी सर्वज्ञ भगवान महावीर को नमस्कार करके नियमसार शास्त्र लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

वर नंत दर्शनज्ञानमय जिनवीर को नमकर कहूँ।
यह नियमसार जु केवली श्रुतकेवली द्वारा कथित।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमंगलस्वरूपमहावीराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५।।

अब, टीकाकार पुनः भगवान महावीर की स्तुति करते हैं –

(रोला)

शुद्धभाव से नाश किया है कामभाव का।
तीन लोक में पूज्य देवगण जिनको नमते।।
ज्ञान राज्य के राजा नाशक कर्मबीज के।
समोसरन के वासी जग में वीर जिनेश्वर।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।६।।

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवार्थकाः।
प्रोक्ताः सूत्रकृता पूर्वं प्रत्याख्यानादि सत्क्रियाः।। ७ ।।

(गाथा)

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।। १ ।।

(मालिनी)

जयति जगति वीरः शुद्धभावास्तमारः
त्रिभुवनपूज्यः पूर्णबोधैकराज्यः।
नतिदविजसमाजः प्रास्तजन्मद्रुबीजः
समवसृतिनिवासः केवलश्रीनिवासः।। ८ ।।

अब, मोक्ष और मोक्षमार्ग की चर्चा आरंभ करते हैं –

(हरिगीत)

जैन शासन में कहा है मार्ग एवं मार्गफल।
है मार्ग मोक्ष उपाय एवं मोक्ष ही है मार्गफल।। २ ।।

ॐ ह्रीं मोक्ष-मोक्षमार्गनिरूपक श्रीनिमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।७।।

अब, कौन पुरुष मुक्ति की प्राप्ति करते हैं?; यह बताते हैं –

(रोला)

कभी कामिनी रति सुख में यह रत रहता है।
कभी संपती की रक्षा में उलझा रहता।।
किन्तु जो पण्डितजन जिनपथ पा जाते हैं।
हो जाते वे मुक्त आत्मा में रत होकर।। ९ ।।

ॐ ह्रीं मुमुक्षुस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।८।।

अब, 'नियमसार' शब्द का अर्थ बताते हैं –

(हरिगीत)

सद् ज्ञान-दर्शन-चरण ही हैं 'नियम' जानो नियम से।
विपरीत का परिहार होता सार इस शुभ वचन से।। ३ ।।

ॐ ह्रीं नियमसार प्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९।।

(गाथा)

मग्गो मग्गफ्लं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवाओ तस्स फ्लं होइ णिव्वाणं।। २ ।।

(पृथ्वी)

क्वचिद् व्रजति कामिनीरतिसमुत्थसौख्यं जनः।
क्वचिद् द्रविणरक्षणे मतिमिमां च चक्रे पुनः।।
क्वचिज्जिनवरस्य मार्गमुपलभ्य यः पन्डितो।
निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः।। ९ ।।

(गाथा)

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।। ३ ।।

अब, टीकाकार अपनी भावना व्यक्त करते हैं –

(रोला)

विपर्यास से रहित अनुत्तम रत्नत्रय को।
पाकर मैं तो वरण करूँ अब शिवरमणी को।।
प्राप्त करूँ मैं निश्चय रत्नत्रय के बल से।
अरे अतीन्द्रिय अशरीरी आत्मीक सुक्ख को।। १० ।।

ॐ ह्रीं अनन्तसुखभावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०।।

अब, 'नियमसार' शब्द का अर्थ बताते हुये निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं – (हरिगीत)

है नियम मोक्ष उपाय उसका फल परम निर्वाण है।
इन ज्ञान–दर्शन–चरण त्रय का भिन्न–भिन्न विधान है।। ४ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयरत्नत्रयस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११।।

अब, टीकाकार उक्त गाथा के भाव का पोषक एक कलशरूप काव्य लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(रोला)

रत्नत्रय की परिणति से परिणमित आतमा।
श्रमणजनों के लिए सहज यह मोक्षमार्ग है।।
दर्शन–ज्ञान–चरित आतम से भिन्न नहीं हैं।
जो जाने वह भव्य न जावे जननि उदर में।। ११ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयैव मोक्षमार्गनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१२।।

(आर्या)

इति विपरीतविमुक्तं रत्नत्रयमनुत्तमं प्रपद्याहम्।
अपुनर्भवभामिन्यां समुद्भवमनंगशं यामि।। १० ।।

(गाथा)

णियमं मोक्खउवाओ तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्हं पि य पत्तेयपरूवणा होई।। ४ ।।

(मदाक्रांता)

मोक्षोपायो भवति यमिनां शुद्धरत्नत्रयात्मा।
ह्यात्मा ज्ञानं न पुनरपरं दृष्टिरन्याऽपि नैव।।
शीलं तावन्न भवति परं मोक्षुभिः प्रोक्तमेतद्।
बुद्ध्वा जन्तुर्न पुनरुदरं याति मातुः स भव्यः।। ११ ।।

अब, व्यवहार सम्यग्दर्शन की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

इन आप्त–आगम–तत्त्व का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।
सम्पूर्ण दोषों से रहित अर सकल गुणमय आप्त है।। ५ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारसम्यक्त्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३।।

अब, टीकाकार भगवान की भक्ति की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

भवभयभेदक आप्त की भक्ति नहीं यदि रंच।
तो तू है मुख मगर के भवसागर के मध्य।। १२ ।।

ॐ ह्रीं भगवद्भक्तिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१४।।

अब, अठारह दोषों के नाम गिनाते हैं –

(हरिगीत)

भय भूँख चिन्ता राग रुष रुज स्वेद जन्म जरा मरण।
रति अरति निद्रा मोह विस्मय खेद मद तृष दोष हैं।। ६ ।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।१५।।

अब, टीकाकार उक्त प्रकरण के पोषक एक गाथा तथा एक छन्द उद्धृत करते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

जहाँ दया वह धर्म है जहाँ न विषय विकार।
वह तप ठारह दोष बिन देव होंय अवधार।। १ ।।

ॐ ह्रीं आप्तस्वरूप निरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६।।

(गाथा)

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगय असेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो।। ५ ।।

(आर्या)

भवभयभेदिनि भगवति भवतः किं भक्तिरत्र न समस्ति।
तर्हि भवाम्बुधिमध्यग्राहमुखान्तर्गतो भवसि।। १२ ।।

(गाथा)

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेद महो रइ विम्हिय णिद्दा जणुव्वेगो।। ६ ।।
सो धम्मो जत्थ दया सो वि तवो विसयणिग्गहो जत्थ।
दसअट्ठदोसरहिओ सो देवो णत्थि सन्देहो।। १ ।।[1]

---

१. अनुपलब्ध है।

(रोला)

इष्ट अर्थ की सिद्धि होती है सुबोध से।
अर सुबोध उपलब्धी होती है सुशास्त्र से।।
और आप्त से शास्त्र पूज्य हैं आप्त इसलिये।
किया गया उपकार संतजन कभी न भूलें।। २ ।।

ॐ ह्रीं आप्तमहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७।।

अब, टीकाकार भगवान नेमिनाथ की स्तुति करते हुये एक काव्य लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(रोला)

शत इन्द्रों से पूज्य ज्ञान साम्राज्य अधपती।
कामजयी लौकान्तिक देवों के अधिनायक।।
पाप विनाशक भव्यनीरजों के तुम सूरज।
नेमीश्वर सुखभूमि सुक्ख दें भवभयनाशक।। १३ ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८।।

अब, परमात्मा का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

सम्पूर्ण दोषों से रहित सर्वज्ञता से सहित जो।
बस वे ही हैं परमातमा अन कोई परमातम नहीं।। ७ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९।।

(मालिनी)

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः
स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैः
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति।। २ ।।[1]
शतमखशतपूज्यः प्राज्यसद्बोधराज्यः
स्मरतिरसुरनाथः प्रास्तदुष्टाघयूथः।
पदनतवनमाली भव्यपद्मांशुमाली
दिशतु शमनिशं नो नेमिरानन्दभूमिः।। १३ ।।

(गाथा)

णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा।। ७ ।।

---

१. आचार्य विद्यानन्दिस्वामी रचित श्लोक, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

अब, टीकाकार आचार्य कुन्दकुन्द के ही प्रवचनसार परमागम से एक गाथा उद्घृत करते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(हरिगीत)

प्राधान्य है त्रैलोक्य में ऐश्वर्य ऋद्धि सहित हैं।
तेज दर्शन ज्ञान सुख युत पूज्य श्री अरहंत हैं।। ३ ।।

ॐ ह्रीं अरहंतस्वरूपनिरूपक श्रीनिमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०।।

अब, टीकाकार समयसार की आत्मख्याति टीका से एक कलश उद्घृत करते हैं –

(हरिगीत)

लोकमानस रूप से रवितेज अपने तेज से।
जो हरें निर्मल करें दशदिश कान्तिमय तनतेज से।।
जो दिव्यध्वनि से भव्यजन के कान में अमृत भरें।
उन सहस अठ लक्षण सहित जिन–सूरि को वन्दन करें।। ४ ।।

ॐ ह्रीं अरहंतस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१।।

अब, टीकाकार भगवान नेमीनाथ की स्तुति करते हुये एक छन्द लिखते हैं –

(रोला)

अलिगण स्वयं समा जाते ज्यों कमल पुष्प में।
त्यों ही लोकालोक लीन हों ज्ञान कमल में।।

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं।
तिहुवणपहाणदइयं माहप्पं जस्स सो अरिहो।। ३।।[1]

(शार्दूलविक्रीडित)

कांत्यैव स्नपयंति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धंति ये।
धामोद्दामहस्विनां जनमनो मृष्णन्ति रूपेण ये।।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं।
वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः।। ४ ।।[2]

---

१. आचार्य कुन्दकुन्द : प्रवचनसार, आचार्य जयसेन कृत तात्पर्यवृत्ति टीका में उपलब्ध ७१ वीं गाथा
२. समयसार, कलश २४

जिनके उन श्री नेमिनाथ के चरण जजूँ मैं।
हो जाऊँ मैं पार भवोदधि निज भुजबल से।। १४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसर्वज्ञस्वरूपनेमिनाथाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२।।

अब, शास्त्र का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

पूरवापर दोष विरहित वचन जिनवर देव के।
आगम कहे है उन्हीं में तत्त्वारथों का विवेचन।। ८ ।।

ॐ ह्रीं शास्त्रस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२३।।

अब, टीकाकार आचार्य समन्तभद्र के रत्नकरण्डश्रावकाचार से एक छन्द उद्घृत करते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

जो न्यूनता विपरीतता अर अधिकता से रहित है।
सन्देह से भी रहित है स्पष्टता से सहित है।।
जो वस्तु जैसी उसे वैसी जानता जो ज्ञान है।
जाने जिनागम वे कहें वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।। ५ ।।

ॐ ह्रीं निःशंकितांगस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२४।।

(मालिनी)

जगदिदमजगच्च ज्ञाननीरेरुहान्त–
र्भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं यस्य नित्यम्।
तमपि किल यजेहं नेमितीर्थंकरेशं
जलनिधिमपि दोर्भ्यामुत्तराम्यूर्ध्ववीचिम्।। १४ ।।

(गाथा)

तस्स मुहुग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।। ८ ।।

(आर्या)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं बिना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।। ५ ।।[1]

---

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक ४२

अब, टीकाकार जिनागम की वंदना करते हुये एक छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

मुक्तिमग के मग तथा जो ललित में भी ललित हैं।
जो भविजनों के कर्ण–अमृत और अनुपम शुद्ध हैं।।
भविविजन के उग्र दावानल शमन को नीर हैं।
मैं नमूँ उन जिनवचन को जो योगिजन के वंद्य हैं।। १५ ।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनागमाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५।।

अब, दिव्यध्वनि में समागत तत्त्वार्थों की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

विविध गुणपर्याय से संयुक्त धर्माधर्म नभ।
अर जीव पुद्गल काल को ही यहाँ तत्त्वारथ कहा।। ९ ।।

ॐ ह्रीं तत्त्वार्थप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६।।

अब, टीकाकार छह द्रव्यों के श्रद्धान का फल बताते हैं –

(रोला)

जिनपति द्वारा कथित मार्गसागर में स्थित।
अरे तेज के पुंज विविध विध किरणों वाले।।
छह द्रव्यों रूपी रत्नों को तीक्ष्णबुद्धि जन।
धारण करके पा जाते हैं मुक्ति सुन्दरी।। १६।।

ॐ ह्रीं षड्द्रव्यश्रद्धानफलनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२७।।

(हरिणी)

ललितललितं शुद्धं निर्वाणकारणकारणं।
निखिलभविनामेतत्कर्णामृतं जिनसद्वचः।।
भवपरिभवारण्यज्वालित्विषां प्रशमे जलं।
प्रतिदिनमहं वन्दे वन्द्यं सदा जिनयोगिभिः।। १५।।

(गाथा)

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।। ९।।

(मालिनी)

इति जिनपतिमार्गाम्भोधिमध्यस्थरत्नं।
द्युतिपटलजटालं तद्धि षड्द्रव्यजातम्।।
हृदि सुनिशितबुद्धिर्भूषणार्थं विधत्ते।
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। १६ ।।

अब, जीव का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जीव है उपयोगमय उपयोग दर्शन ज्ञान है।
स्वभाव और विभाव इस विधि ज्ञान दोय प्रकार है।। १० ।।

ॐ ह्रीं जीवद्रव्यस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८।।

अब, टीकाकार ज्ञान के भेद जानने का फल निरूपित करते हैं –

(रोला)

जिनपति द्वारा कथित ज्ञान के भेद जानकर।
परभावों को त्याग निजातम में रम जाते।।
कर प्रवेश चित्त्वमत्कार में वे मुमुक्षुगण।
अल्पकाल में पा जाते हैं मुक्तिसुन्दरी।। १७ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानभेद श्रद्धानफलनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९।।

अब, ज्ञानोपयोग के भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

अतीन्द्रिय असहाय केवलज्ञान ज्ञान स्वभाव है।
सम्यक् असम्यक् पने से यह द्विविध ज्ञान विभाव है।। ११ ।।
मतिश्रुतावधि मन:पर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
कुमति कुश्रुत अर कुवधि ये तीन मिथ्याज्ञान हैं।। १२ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानोपयोगस्य भेदनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।३०।।

(गाथा)

जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति।। १०।।

(मालिनी)

अथ सकलजिनोक्तज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा।
परिहृतपरभाव: स्वस्वरूपे स्थितो य:।।
सपदि विशति यत्तच्चिमत्कारमात्रं।
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप:।। १७।।

(गाथा)

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं।। ११।।
सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं तिवियप्पं मदियाई भेददो चेव।। १२।।

अब, टीकाकार पुण्य-पाप के त्याग की प्रेरणा देते हैं -

(रोला)

इसप्रकार का भेदज्ञान पाकर जो भविजन।
भवसागर के मूलरूप जो सुक्ख-दुक्ख हैं।।
सुकृत-दुष्कृत होते जो उनके भी कारण।
उन्हें छोड़ वे शाश्वत सुख को पा जाते हैं।। १८ ।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापत्यागप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३१।।

अब, टीकाकार पुण्य-पाप के फल में प्राप्त होने वाले शरीर और परिग्रह के त्याग की प्रेरणा देता है -

(दोहा)

करो उपेक्षा देह की परिग्रह का परिहार।
अव्याकुल चैतन्य को भावो भव्य विचार।। १९ ।।

ॐ ह्रीं शरीर-परिग्रहत्यागप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३२।।

अब, भेदज्ञान की वंदना करते हैं -

(रोला)

यदि मोह का निर्मूलन अर विलय द्वेष का।
और शुभाशुभ रागभाव का प्रलय हो गया।।
तो पावन अतिश्रेष्ठज्ञान की ज्योति उदित हो।
भेदज्ञानरूपी तरु का यह फल मंगलमय।। २० ।।

ॐ ह्रीं श्रीभेदज्ञानप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३।।

(मालिनी)

इति निगदितभेदज्ञानमासाद्य भव्यः।
परिहरतु समस्तं घोरसंसारमूलम्।।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा।
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति।। १८।।

(अनुष्टुभ्)

परिग्रहाग्रहं मुक्त्वा कृत्वोपेक्षां च विग्रहे।
निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं भावयेद् बुधः।। १९।।

(शार्दुलविक्रीडित)

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्।
द्वेषाम्भःपरिपूर्णमानसघटप्रध्वंसनात् पावनम्।।
ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं।
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मंगलम्।। २०।।

अब, टीकाकार सहजज्ञान की महिमा बताते हैं –

(रोला)

जिसकी विकसित सहजदशा अंतर्मुख जिसने।
तमोवृत्ति को नष्ट किया है निज ज्योति से।।
सहजभाव से लीन रहे चित् चमत्कार में।
सहजज्ञान जयवंत रहे सम्पूर्ण मोक्ष में।। २१ ।।

ॐ ह्रीं सहजज्ञानमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४।।

अब, टीकाकार निर्विकल्प होने की बात कहते हैं –

(सोरठा)

सहजज्ञान सर्वस्व शुद्ध चिदातम आतमा।
उसे जान अविलम्ब निर्विकल्प मैं हो रहा।। २२ ।।

ॐ ह्रीं निर्विकल्पप्राप्तिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।३५।।

अब, दर्शनोपयोग के भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

स्वभाव और विभाव दर्शन भी कहा दो रूप में।
पर अतीन्द्रिय असहाय केवल स्वभावदर्शन ही कहा।। १३ ।।

ॐ ह्रीं दर्शनोपयोगस्य भेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।३६।।

(मदाक्रांता)

मोक्षे मोक्षे जयति सहजज्ञानमानन्दतानं।
निर्व्याबाधं स्फुटितसहजावस्थमन्तर्मुखं च।।
लीनं स्वस्मिन्सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे।
स्वस्य ज्योति:प्रतिहततमोवृत्ति नित्याभिरामम्।। २१ ।।

(अनुष्टुभ्)

सहजज्ञानसाम्राज्यसर्वस्वं शुद्धचिन्मयम्।
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम्।। २२ ।।

(गाथा)

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं।। १३ ।।

अब, टीकाकार मोक्षमार्ग बताते हैं –

(दोहा)

दर्शनज्ञानचरित्रमय चित् सामान्यस्वरूप।
मार्ग मुमुक्षुओं के लिए अन्य न कोई स्वरूप।। २३ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३७।।

अब, दर्शनोपयोग के भेदों को बताते हैं –

(हरिगीत)

चक्षु अचक्षु अवधि त्रय दर्शन विभाव कहे गये।
पर्याय स्वपरापेक्ष अर निरपेक्ष द्विविध प्रकार है।। १४ ।।

ॐ ह्रीं दर्शनोपयोगभेदनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३८।।

अब टीकाकार कौन पुरुष मुक्ति की प्राप्ति करता है; यह बताते हैं –

(वीर)

परभावों के होने पर भी परभावों से भिन्न जीव है।
सहजगुणों की मणियों का निधि है सम्पूरण शुद्ध जीव यह।।
ज्ञानानन्दी शुद्ध जीव को शुद्धदृष्टि से जो भजते हैं।
वही पुरुष सुखमय अविनाशी मुक्तिसुंदरी को वरते हैं।। २४ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्राप्तिकारक-आत्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३९।।

(इन्द्रवज्रा)

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम्।
मुक्तिस्पृहाणामयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण विना न मो ।। २३ ।।

(गाथा)

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो।। १४ ।।

(मालिनी)

अथ सति परभावे शुद्धमात्मानमेकं।
सहजगुणमणीनामाकरं पूर्णबोधम् ।।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः।
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ।। २४ ।।

अब, टीकाकार कारणपरमात्मा को भजने की प्रेरणा देते हैं –

(वीर)

इसप्रकार गुणपर्यायों के होने पर भी कारण-आतम।
गहराई से राजमान है श्रेष्ठनरों के हृदयकमल में।।
स्वयं प्रतिष्ठित समयसारमय शुद्धातम को हे भव्योत्तम।
अभी भज रहे अरे उसी को गहराई से भजो निरन्तर।। २५ ।।

ॐ ह्रीं कारणपरमात्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४०।।

अब, टीकाकार आत्माराधना की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

क्वचित् सद्गुणों से आतम शोभायमान है।
असत् गुणों से युक्त क्वचित् देखा जाता है।।
इसी तरह है क्वचित् सहज पर्यायवान पर।
क्वचित् अशुभ पर्यायों वाला है यह आतम।।
सदा सहित होने पर भी जो सदा रहित है।
इन सबसे जो जीव उसी को मैं भाता हूँ।।
सब अर्थों की सिद्धि हेतु हे भविजन जानो।
सहज आतमाराम उसी को मैं ध्याता हूँ।। २६ ।।

ॐ ह्रीं आत्माराधनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४१।।

इति परगुणपर्यायेषु सत्सूत्तमानां।
हृदयसरसिजाते राजते कारणात्मा।।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्मरूपं।
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम्।। २५।।

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः।
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।।
सनाथमपि जीवतत्त्वमनाथं समस्तैरिदं।
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्धयै सदा।। २६।।

अब, पर्यायों के भेदों को बताते हैं –

(हरिगीत)

नर नारकी तिर्यंच सुर पर्यय विभाव कही गईं।
निरपेक्ष कर्मोपधि सुध पर्यय स्वभाव कही गई ।। १५ ।।

ॐ ह्रीं पर्यायभेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२।।

अब, परमतत्व के अभ्यास की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

बहुविभाव होने पर भी हैं शुद्धदृष्टि जो।
परमतत्त्व के अभ्यासी निष्णात पुरुष वे।।
'समयसार से अन्य नहीं है कुछ भी' ह्न ऐसा।
मान परमश्री मुक्तिवधू के वल्लभ होते।। २७ ।।

ॐ ह्रीं परमतत्त्वाभ्यासप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४३।।

अब, पर्यायों के भेदों के प्रभेद बताते हैं –

(हरिगीत)

कर्मभूमिज भोगभूमिज मानवों के भेद हैं।
अर सात नरकों की अपेक्षा सप्तविध नारक कहे।। १६ ।।
चतुर्दश तिर्यंच एवं देव चार प्रकार के।
इन सभी का विस्तार जानो अरे लोक विभाग से।। १७।।

ॐ ह्रीं पर्यायप्रभेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४।।

(गाथा)

णारणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जिय पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।। १५ ।।

(मालिनी)

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः
सहजपरमतत्त्वाभ्यासनिष्णातबुद्धिः ।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीति मत्त्वा
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। २७।।

(गाथा)

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्तविहा णेरइया णादव्वा पुढविभेदेण।। १६ ।।
चउदह भेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं।। १७ ।।

अब, टीकाकार जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करते हुये भक्ति करने की प्रेरणा देते हैं –

(वीर)

दैवयोग से मानुष भव में विद्याधर के भवनों में।
स्वर्गों में नरकों में अथवा नागपती के नगरों में।।
जिनमंदिर या अन्य जगह या ज्योतिषियों के भवनों में।
कहीं रहूँ पर भक्ति आपकी रहे निरंतर नजरों में।। २८।।

(रोला)

अरे देखकर नराधिपों का वैभव जड़मति।
क्यों पाते हो क्लेश पुण्य से यह मिलता है।।
पुण्य प्राप्त होता है जिनवर की पूजन से।
यदि हृदय में भक्ति स्वयं सब पा जाओगे।। २९ ।।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रभक्तिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४५।।

अब, जीव की अशुद्धावस्था का निरूपण करते हैं –

(दोहा)

यह जीव करता–भोगता जड़कर्म का व्यवहार से।
किन्तु कर्मजभाव का कर्ता कहा परमार्थ से।। १८।।

ॐ ह्रीं अशुद्धजीवनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६।।

(मंदाक्रांता)

स्वर्गे वास्मिन्मनुजभुवने खेचरेन्द्रस्य दैवा–
ज्जोतिलोके फणपतिपुरे नारकाणां निवासे।
अन्यस्मिन् वा जिनपतिभवने कर्मणां नोऽस्तु सूतिः
भूयो भूयो भवतु भवतः पादपंकेजभक्तिः।। २८।।

(शार्दूलविक्रीडित)

नानानूननराधिनाथविभवानाकर्ण्य चालोक्य च
त्वं क्लिश्नासि मुधात्र किं जडमते पुण्यार्जितास्ते ननु।
तच्छक्तिर्जिननाथपदकमलद्वन्द्वार्चनायामियं
भक्तिस्ते यदि विद्यते बहुविधा भोगाः स्युरेते त्वयि।। २९।।

(गाथा)

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो।। १८।।

अब, टीकाकार मुक्तिरूपी सुन्दरी को प्राप्त करने का उपाय बताते हैं –

(दोहा)

परमगुरु की कृपा से मोही रागी जीव।
समयसार को जानकर शिव श्री लहे सदीव।। ३० ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्राप्ति-उपायनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४७।।

अब, संसार निरोध का उपाय बताते हैं –

(दोहा)

भावकरम के रोध से द्रव्य करम का रोध।
द्रव्यकरम के रोध से हो संसार निरोध।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं संसारनिरोधोपायनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।४८।।

अब, सम्यग्ज्ञान की महिमा बताते हैं –

(सोरठा)

करें शुभाशुभभाव, मुक्तिमार्ग जाने नहीं।
अशरण रहें सदीव मोह मुग्ध अज्ञानि जन।। ३२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४९।।

(मालिनी)

अपि च सकलरागद्वेषमोहात्मको यः
परमगुरुपदाब्जद्वन्द्वसेवाप्रसादात्।
सहजसमयसारं निर्विकल्पं हि बुद्ध्वा
स भवति परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः।। ३०।।

(अनुष्टुभ्)

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन संसारस्य निरोधनम्।। ३१ ।।

(वसंततिलका)

संज्ञानभावपरिमुक्तविमुग्धजीवः
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्तिमार्गमणुमप्यभिवांछितुं नो
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके।। ३२।।

अब, अतीन्द्रिय सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(दोहा)

कर्मजनित सुख त्यागकर निज में रमें सदीव।
परम अतीन्द्रिय सुख लहें वे निष्कर्मी जीव।। ३३।।

ॐ ह्रीं अतीन्द्रियसुख-उपायप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।५०।।

अब, मुक्ति की प्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(दोहा)

हममें कोई विभाव न हमें न चिन्ता कोई।
शुद्धातम में मगन हम अन्योपाय न होई।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्राप्तिउपायप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५१।।

अब, व्यवहार-निश्चयनय से शुद्धात्मा का वर्णन करते हैं –

(रोला)

संसारी के समलभाव पाये जाते हैं।
और सिद्ध जीवों के निर्मलभाव सदा हों।।
कहता यह व्यवहार किन्तु बुधजन का निर्णय।
निश्चय से शुद्धातम में न बंध-मोक्ष हों।। ३५ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयनयेन शुद्धात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।५२।।

अब, द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय से जीव का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

यः कर्मशर्मनिकरं परिहृत्य सर्वं
निःकर्मशर्मनिकरामृतवारिपूरे।
मज्जन्तमत्यधिकचिन्मयमेकरूपं
स्वं भावमद्वयममुं समुपैति भव्यः।। ३३।।

(मालिनी)

असति सति विभावे तस्य चिंतास्ति नो नः
सततमनुभवामः शुद्धमात्मानमेकम्।
हृदयकमलसंस्थं सर्वकर्मप्रमुक्तं
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात्।। ३४ ।।
भविनि भवगुणाः स्युः सिद्धजीवेपि नित्यं
निजपरमगुणाः स्युः सिद्धिसिद्धाः समस्ताः।
व्यवहरणनयोऽयं निश्चयान्नैव सिद्धि-
र्न च भवति भवो वा निर्णयोऽयं बुधानाम्।। ३५ ।।

(हरिगीत)

द्रव्यनय की दृष्टि से जिय अन्य है पर्याय से।
पर्यायनय की दृष्टि से संयुक्त है पर्याय से।। १९।।

ॐ ह्रीं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयेन जीवस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५३।।

अब, टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा रचित एक काव्य उद्घृत करते हैं –

(रोला)

उभयनयों में जो विरोध है उसके नाशक।
स्याद्वादमय जिनवचनों में जो रमते हैं।।
मोह वमन करअनय–अखण्डित परमज्योतिमय।
स्वयं शीघ्र ही समयसार में वे रमते हैं।। ६।।

ॐ ह्रीं श्रीस्याद्वादमयी–जिनवाणीभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५४।।

अब, टीकाकार स्वयं उक्तभाव का पोषक एक काव्य लिखते हैं –

(रोला)

जिन चरणों के प्रवर भक्त जिनसत्पुरुषों ने।
नयविभाग का नहीं किया हो कभी उल्लंघन।।
वे पाते हैं समयसार यह निश्चित जानो।
आवश्यक क्यों अन्य मतों का आलोड़न हो।। ३६।।

ॐ ह्रीं श्रीस्याद्वादमयी जिनवाणीभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५५।।

(गाथा)

दव्वत्थिएण जीवा वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जयणएण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहिं।। १९ ।।

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिनवचसि रमंते ये स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै–
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव।। ६।।[१]
अथ नययुगयुक्तिं लंघयन्तो न संतः
परमजिनपदाब्जद्वन्द्वमत्तद्विरेफाः।
सपदि समयसारं ते ध्रुवं प्राप्नुवन्ति
क्षितिषु परमतोक्तेः किं फलं सज्जनानाम्।। ३६।।

---

१. समयसार, कलश ४

।। अजीव अधिकार ।।

अब अजीव अधिकार में सर्वप्रथम पुद्गलद्रव्य के भेदों की चर्चा आरंभ करते हैं –

(हरिगीत)

द्विविध पुद्गल द्रव्य है स्कंध अणु के भेद से।
द्विविध परमाणु कहे छह भेद हैं स्कंध के।। २० ।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यभेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५६ ।।

अब, टीकाकार पुद्गल के भेदों का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

गलन से परमाणु पुद्गल खंध पूरणभाव से।
अर लोकयात्रा नहीं संभव बिना पुद्गल द्रव्य के।। ३७।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यभेदस्यस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५७।।

अब, स्कन्धों की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

अतिथूल थूल रु थूल–सूक्षम सूक्ष्म–थूल रु सूक्ष्म अर।
अतिसूक्ष्म ये छह भेद पृथ्वी आदि पुद्गल खंध के।। २१ ।।
भूमि भूधर आदि को अति थूल–थूल कहा गया।
घी तेल और जलादि को ही थूल खंध कहा गया।। २२ ।।

(गाथा)

अणुखंधवियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो।। २० ।।

(अनुष्टुभ्)

गलनादणुरित्यक्तः पूरणात्स्कन्धनामभाक् ।
विनानेन पदार्थेण लोकयात्रा न वर्तते ।। ३७ ।।

(गाथा)

अइथूलथूल थूलं थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होदि छब्भेयं।। २१ ।।
भूपव्वदमादीया भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विण्णेया सप्पीजलतेल्लमादीया।। २२ ।।

धूप छाया आदि को ही थूल-सूक्षम जानिये।
चतु इन्द्रिग्राही खंध सूक्षम-थूल हैं पहिचानिये।। २३।।
करम वरगण योग्य जो स्कंध वे सब सूक्ष्म हैं।
जो करम वरगण योग्य ना वे खंध ही अति सूक्ष्म हैं।। २४।।

ॐ ह्रीं स्कन्धभेदस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ५८।।

अब टीकाकार उक्त बात के पोषण के लिए तीन छन्द उद्घृत करते हैं -

(दोहा)

पृथवी जल छाया तथा चतु इन्द्रिय के योग्य।
ये छह पुद्गल खंध हैं कर्मयोग्य अनयोग्य।। ७।।

ॐ ह्रीं स्कन्धभेददृष्टान्तप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ५९।।

(सोरठा)

थूलथूल अर थूल स्थूल-सूक्ष्म पहिचानिये।
सूक्षमथूलरु सूक्ष्म सूक्षम-सूक्षम जानिये।। ८।।

ॐ ह्रीं स्कन्धभेदनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।६०।।

(हरिगीत)

अरे काल अनादि से अविवेक के इस नृत्य में।
बस एक पुद्गल नाचता चेतन नहीं इस कृत्य में।।

(गाथा)

छायातवमादीया थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिया खंधा चउरक्खविसया य।। २३।।
सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा अइसुहुमा इदि परूवेंति।। २४।।
पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति।। ७।।[1]

(अनुष्टुभ्)

स्थूलस्थूलास्ततः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्मास्ततः परे।
सूक्ष्मस्थूलास्ततः सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मास्ततः परे।। ८।।[2]

---

१. देखो, श्री परमश्रुतप्रभावकमण्डल द्वारा प्रकाशित पंचास्तिकाय, द्वितीय संस्करण, पृ. १३०
२. मार्गप्रकाश, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

यह जीव तो पुद्गलमयी रागादि से भी भिन्न है।
आनन्दमय चिद्भाव तो दृगज्ञानमय चैतन्य है।। ९।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवभेदज्ञानप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६१।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(दोहा)

पुद्गल में रति मत करो हे भव्योत्तम जीव।
निज में रति से तुम रहो शिवश्री संग सदैव।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं जीवपुद्गलभेदज्ञानप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६२।।

अब कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जल आदि धातु चतुष्क हेतुक कारणाणु कहा है।
अर खंध के अवसान को ही कारयाणु कहा है।। २५ ।।

ॐ ह्रीं कारण-कार्यपरमाणुस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६३।।

अब टीकाकार प्रवचनसार की दो गाथायें उद्घृत करते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(वसंततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध-
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः।। ९।।[१]

(मालिनी)

इति विविधविकल्पे पुद्गले दृश्यमाने
न च कुरु रतिभावं भव्यशार्दूल तस्मिन्।
कुरु रतिमतुलां त्वं चिच्चमत्कारमात्रे
भवसि हि परमश्रीकामिनीकामरूपः।। ३८।।

(गाथा)

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणं ति तं णेयो।
खंधाणं अवसाणं णादव्वो कज्जपरमाणु।। २५ ।।

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द ४४

(हरिगीत)

परमाणुओं का परिणमन सम-विषम अर स्निग्ध हो।
अर रूक्ष हो तो बंध हो दो अधिक पर न जघन्य हो।। १० ।।
दो अंश चिकने अणु चिकने-रूक्ष हो यदि चार तो।
हो बंध अथवा तीन एवं पाँच में भी बंध हो।। ११ ।।

ॐ ह्रीं पुद्गलानां बंधस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६४।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं -

(वीर)

छह प्रकार के खंध और हैं चार भेद परमाणु के।
हमको क्या लेना-देना इन परमाणु-स्कंधों से।।
अक्षय सुखनिधि शुद्धातम जो उसे नित्य हम भाते हैं।
उसमें ही अपनापन करके बार-बार हम ध्याते हैं।। ३९।।

ॐ ह्रीं पुद्गलोपेक्षापूर्वक अक्षयात्मभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६५।।

अब परमाणु का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

इन्द्रियों से ना ग्रहे अविभागि जो परमाणु है।
वह स्वयं ही है आदि एवं स्वयं ही मध्यान्त है।। २६ ।।

ॐ ह्रीं परमाणुस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ६६।।

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा वा विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि बज्झन्ति हि आदिपरिहीणा।। १०।।[१]
णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो।। ११।।[२]

(अनुष्टुभ्)

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मानमक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहः।। ३९।।

(गाथा)

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणाहि।। २६।।

---

१. प्रवचनसार, गाथा - १६५ २. वही, गाथा - १६६

अब टीकाकार सभी द्रव्य अपने-अपने में रहते हैं, यह कहते हैं -

(दोहा)

जब जड़ पुद्गल स्वयं में सदा रहे जयवंत।
सिद्धजीव चैतन्य में क्यों न रहे जयवंत।। ४० ।।

ॐ ह्रीं सर्वद्रव्यस्वरूपसिद्धिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। ६७।।

अब स्वभावपुद्गल के स्वरूप को समझाते हैं -

(हरिगीत)

स्वभाव गुणमय अणु में इक रूप रस गंध फरस दो।
विभाव गुणमय खंध तो बस प्रगट इन्द्रिय ग्राह्य है।। २७ ।।

ॐ ह्रीं स्वभाव-विभावपुद्गलस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। ६८।।

अब टीकाकार दो छन्द उद्घृत करते हैं -

(हरिगीत)

एक रस गंध वर्ण एवं फास दो जिसमें रहें।
वह शब्द का कारण अशब्दी खंद में परमाणु है।। १२ ।।
अष्टविध स्पर्श अन्तिम चार में दो वर्ण इक।
रस गंध इक परमाणु में हैं अन्य कुछ भी है नहीं।। १३ ।।

ॐ ह्रीं परमाणुगुणप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ६९।।

(अनुष्टूभ्)

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मनः।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठंति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।। ४० ।।

(गाथा)

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं।। २७ ।।
एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि।। १२ ।।[1]

(अनुष्टूभ्)

वसुधान्त्यचतुःस्पर्शेषु चिन्त्यं स्पर्शनद्वयम्।
वर्णो गन्धो रसश्चैकः परमाणोः न चेतरे।। १३ ।।[2]

---

१. पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा - ८१ २. मार्गप्रकाश, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

अब टीकाकार शुद्धात्मा की भावना भाने की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

वरणादि परमाणु में रहें न कारज सिद्धि।
माने भवि शुद्धात्म की करे भावना नित्य।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७०।।

अब पुद्गलपर्याय के स्वरूप का व्याख्यान करते हैं –

(हरिगीत)

स्वभाविक पर्याय पर निरपेक्ष ही होती सदा।
पर विभाविक पर्याय तो स्कंध ही होता सदा।। २८।।

ॐ ह्रीं पुद्गलस्वभावविभावपर्यायप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७१।।

अब टीकाकार जिननाथ की भक्ति करते हुये एक काव्य लिखते हैं –

(दोहा)

जिसप्रकार जिननाथ के कामभाव न होय।
उस प्रकार परमाणु के शब्दोच्चार न होय।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं सोदाहरणशब्दरहितपरमाणुप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७२।।

(मालिनी)

अथ सति परमाणोरेकवर्णादिभास्वन्
निजगुणनिचयेऽस्मिन्नास्ति मे कार्यसिद्धिः।
इति निजहृदि मत्त्वा शुद्धमात्मानमेकम्
परमसुखपदार्थी भावयेद्भव्यलोकः।। ४१।।

(गाथा)

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जाओ।
खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ।। २८ ।।

(मालिनी)

परपरिणतिदूरे शुद्धपर्यायरूपे
सति न च परमाणोः स्कन्धपर्यायशब्दः।
भगवति जिननाथे पंचबाणस्य वार्ता
न च भवति यथेयं सोऽपि नित्यं तथैव।। ४२।।

अब पुद्गलद्रव्य के व्याख्यान का उपसंहार करते हैं –

(हरिगीत)

परमाणु पुद्गल द्रव्य है ह्न यह कथन है परमार्थ का।
स्कंध पुद्गल द्रव्य है ह्न यह कथन है व्यवहार का।। २९।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारनयेन पुद्गलस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। ७३।।

अब टीकाकार तत्त्वार्थ को जानकर आत्म साधना की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जिनवरकथित सन्मार्ग से तत्त्वार्थ को पहिचान कर।
पररूप चेतन-अचेतन को पूर्णत: परित्याग कर।।
हे भव्यजन ! नित ही भजो तुम निर्विकल्प समाधि में।
निजरूप ज्ञानानन्दमय चित्चमत्कारी आत्म को।। ४३।।

ॐ ह्रीं तत्त्वज्ञानपूर्वकआत्मसाधनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।७४।।

अब अब ध्यानस्थ योगी का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

पुद्गल अचेतन जीव चेतन भाव अपरमभाव में।
निष्पन्न योगीजनों को ये भाव होते ही नहीं।। ४४।।

ॐ ह्रीं ध्यानस्थयोगीप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। ७५।।

(गाथा)

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोग्गलदव्वो त्ति पुणो ववदेसो होदि खंधस्स।। २९ ।।

(मालिनी)

इति जिनपतिमार्गाद् बुद्धतत्त्वार्थजात:
त्यजतु परमशेषं चेतनाचेतनं च।
भजतु परमतत्त्वं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तर्निर्विकल्पे समाधौ।। ४३।।

(अनुष्टुप्)

पुद्गलोऽचेतनो जीवश्चेतनश्चेति कल्पना।
साऽपि प्राथमिकानां स्यान्न स्यान्निषपन्नयोगिनाम्।। ४४।।

अब राग-द्वेष से रहित यति का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

जड़ देह में न द्वेष चेतन तत्त्व में भी राग ना।
शुद्धात्मसेवी यतिवरों की अवस्था निर्मोह हो।। ४५ ।।

ॐ ह्रीं राग-द्वेषरहितयतिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।७६।।

अब धर्म, अधर्म और आकाशद्रव्य का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

सब द्रव्य के अवगाह में नभ जीव पुद्गल द्रव्य के।
गमन थिति में धर्म और अधर्म द्रव्य निमित्त हैं।। ३० ।।

ॐ ह्रीं धर्माधर्माकाशद्रव्यस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।७७।।

अब टीकाकार धर्म, अधर्म और आकाशद्रव्य को जानने पर भी अपनी आत्मा के अवलोकन की प्रेरणा देते हैं -

(दोहा)

धर्माधर्माकाश को द्रव्यरूप से जान।
भव्य सदा निज में बसो ये ही काम महान।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं निजात्मावलोकनप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।७८।।

अब कालद्रव्य की चर्चा करते हुये व्यवहारकाल का स्वरूप बताते हैं -

---

(उपेन्द्रवज्रा)

अचेतने पुद्गलकायकेऽस्मिन् सचेतने वा परमात्मत्त्वे।
न रोषभावो न च रागभावो भवेदियं शुद्धदशा यतीनाम्।। ४५।।

(गाथा)

गमणणिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपोग्गलाणं च।
अवगहणं आयासं जीवादीसव्वदव्वाणं।। ३० ।।

(मालिनी)

इह गमननिमित्तं यत्स्थितेः कारणं वा
पदपरमखिलानां स्थानदानप्रवीणम्।
तदखिलमवलोक्य द्रव्यरूपेण सम्यक्
प्रविशतु निजतत्त्वं सर्वदा भव्यलोकः।। ४६।।

(हरिगीत)

समय आवलि भेद दो भूतादि तीन विकल्प हैं।
संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत बखानिये।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारकालभेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।। ७९।।

अब टीकाकार उपरोक्त बात के लिये एक गाथा उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

समय–निमिष–कला–घड़ी दिनरात–मास–ऋतु–अयन।
वर्षादि का व्यवहार जो वह पराश्रित जिनवर कहा।। १४।।

ॐ ह्रीं व्यवहारकालनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ८०।।

अब टीकाकार आत्मतत्त्व के सामने कालद्रव्य की अफलता बताते हैं –

(दोहा)

समय निमिष काष्ठा कला घड़ी आदि के भेद।
इनसे उपजे काल यह रंच नहीं सन्देह।।
पर इससे क्या लाभ है शुद्ध निरंजन एक।
अनुपम अद्भुत आतमा मैं ही रहूँ हमेश।। ४७।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्य अफलत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८१।।

अब निश्चयकाल का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

जीव एवं पुद्गलों से समय नंत गुणे कहे।
कालाणु लोकाकाश थित परमार्थ काल कहे गये।। ३२।।

ॐ ह्रीं निश्चयकालप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८२।।

(गाथा)

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तीदो संखेज्जावलिहदसंठाणमप्पाणं।। ३१ ।।

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसंवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।। १४।।[1]

(मालिनी)

समयनिमिषकाष्ठा सत्कलानाडिकाद्याद्
दिवसरजनिभेदाज्जायते काल एषः।
न च भवति फलं मे तेन कालेन किंचिद्
निजनिरूपमतत्त्वं शुद्धमेकं विहाय।। ४७।।

(गाथा)

जीवादु पोग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य परमट्ठो सो हवे कालो।। ३२।।

---

१. पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा २५

अब टीकाकार उपरोक्त बात की सिद्धि के लिये तीन छन्द उद्घृत करते हैं –

(हरिगीत)

पुद्गलाणु मंदगति से चले जितने काल में।
रे एक गगनप्रदेश पर परदेश विरहित काल वह।। १५ ।।

ॐ ह्रीं कालाणुस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८३।।

(हरिगीत)

जान लो इस लोक के जो एक-एक प्रदेश पर।
रत्नराशिवत् जड़े वे असंख्य कालाणु दरव।। १६।।

ॐ ह्रीं कालाणुसंख्याप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८४।।

(हरिगीत)

सब द्रव्यों में परिणमन काल बिना न होय।
और परिणमन के बिना कोई वस्तु न होय।। १७।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्यमहत्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।८४।।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज कलश के रूप में दो छन्द स्वयं लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

घट बनने में निमित्त है ज्यों कुम्हार का चक्र।
द्रव्यों के परिणमन में त्यों निमित्त यह द्रव्य।।
इसके बिन न कोई भी द्रव्य परिणमित होय।
इसकारण ही सिद्ध रे इसकी सत्ता होय।। ४८।।

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स।। १५।।[१]
लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखदव्वाणि।। १६।।[२]

(अनुष्टुप्)

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदंतरात्।
न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते।। १७।।[३]
वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत्।
पंचानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत्।। ४८।।

---

१. प्रवचनसार, गाथा – १३८ २. बृहदद्रव्यसंग्रह, गाथा २२

३. मार्गप्रकाश, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

जिन आगम आधार से धर्माधर्माकाश।
जिय पुद्गल अर काल का होता है आभास।। ४९ ।।

ॐ ह्रीं कालद्रव्यस्यनिमित्तत्त्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८५।।

अब 'धर्मादि चार द्रव्यों की मात्र स्वभावपर्यायें ही होती हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जीवादि के परिणमन में यह काल द्रव्य निमित्त है।
धर्म आदि चार की निजभाव गुण पर्याय है।। ३३ ।।

ॐ ह्रीं स्वभावपर्यायस्वरूपधर्माधर्माकाशकालद्रव्यनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८६।।

अब टीकाकार के द्वारा आशीर्वचनरूप छन्द में भव्य जीवों को परिभ्रमण से मुक्त होने की भावना की गई है –

(त्रिभंगी)

जय भव भय भंजन, मुनि मन रंजन, भव्यजनों को हितकारी।
यह षट्द्रव्यों का, विशद विवेचन, सबको हो मंगलकारी।। ५० ।।

ॐ ह्रीं भव्यजनमंगलभावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८७।।

अब कालद्रव्य को छोड़कर शेष पाँचद्रव्य अस्तिकाय हैं, यह बताते हैं –

प्रतीतिगोचराः सर्वे जीवपुद्गलराशयः।
धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्तपद्धतेः।। ४९ ।।

(गाथा)

जीवादीदव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो।
धम्मादिचउण्हं णं सहावगुणपज्जया होंति।। ३३ ।।

(मालिनी)

इति विरचितमुच्चैर्द्रव्यषट्कस्य भास्वद्
विवरणमतिरम्यं भव्यकर्णामृतं यत्।
तदिह जिनमुनीनां दत्तचित्तप्रमोदं।
भवति भवविमुक्त्यै सर्वदा भव्यजन्तोः।। ५०।।

(हरिगीत)

बहुप्रदेशीपना ही है काय एवं काल बिन।
जीवादि अस्तिकाय हैं ह्न इस भांति जिनवर के वचन।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं अस्तिकायस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८८।।

अब टीकाकार एक छन्द लिखते हैं; जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(हरिगीत)

आगम उदधि से सूरि ने जिनमार्ग की षट्द्रव्यमय।
यह रत्नमाला भव्यकण्ठाभरण गूँथी प्रीति से।। ५१।।

ॐ ह्रीं षट्द्रव्यरत्नमालानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।८९।।

अब षट्द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या बताते हैं –

(हरिगीत)

होते अनंत असंख्य संख्य प्रदेश मूर्तिक द्रव्य के।
होते असंख्य प्रदेश धर्माधर्म चेतन द्रव्य के।। ३५ ।।
असंख्य लोकाकाश के एवं अनन्त अलोक के।
फिर भी अकायी काल का तो मात्र एक प्रदेश है।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं षट्द्रव्यस्यप्रदेशसंख्यानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९०।।

अब टीकाकार मुमुक्षुओं को ग्रन्थ पढ़ने की प्रेरणा देते हैं–

(हरिगीत)

मुमुक्षुओं के कण्ठ की शोभा बढाने के लिए।
षट् द्रव्यरूपी रत्नों का मैंने बनाया आभरण।।

(गाथा)

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाय त्ति।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया हु बहुप्पदेसत्तं।। ३४ ।।

(आर्या)

इति जिनमार्गाम्भोधेरुद्धृता पूर्वसूरिभिः प्रीत्या।
षड्द्रव्यरत्नमाला कंठाभरणाय भव्यानाम्।। ५१।।

(गाथा)

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असंखदेसा हु।। ३५।।
लोयायासे तावं इदरस्स अणंतयं हवे देसा।
कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा।। ३६।।

अरे इससे जानकर व्यवहारपथ को विज्ञजन।
परमार्थ को भी जानते हैं जान लो हे भव्यजन।। ५२ ।।

ॐ ह्रीं षट्द्रव्यस्वरूपसमन्वित ग्रन्थस्वाध्यायप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९१।।

अब आचार्य अजीवाधिकार के उपसंहारस्वरूप एक गाथा लिखते हैं–

(हरिगीत)

एक पुद्गल मूर्त द्रव्य अमूर्तिक हैं शेष सब।
एक चेतन जीव है पर हैं अचेतन शेष सब।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं मूर्तामूर्त–चेतनाचेतनद्रव्यप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९२।।

अब टीकाकार मंगल–आशीर्वादात्मक एक छन्द लिखते हैं–

(हरिगीत)

जिस भव्य के मुख कमल में ये ललितपद वसते सदा।
उस तीक्ष्णबुद्धि पुरुष को शुद्धातमा की प्राप्ति हो।।
चित्त में उस पुरुष के शुद्धातमा नित ही वसे।
इस बात में आश्चर्य क्या यह तो सहज परिणमन है।। ५३ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मप्राप्तियोग्यताप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९३।।

(उपेन्द्रवज्रा)

पदार्थरत्नाभरणं मुमुक्षोः कृतं मया कंठविभूषणार्थम्।
अनेन धीमान् व्यवहारमार्गं बुद्ध्वा पुनर्बोधति शुद्धमार्गम्।। ५२।।

(गाथा)

पोग्गलदव्वं मुत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा।। ३७ ।।

(मालिनी)

इति ललितपदानामावलिर्भाति नित्यं
वदनसरसिजाते यस्य भव्योत्तमस्य।
सपदि समयसारस्तस्य हृत्पुण्डरीके
लसति निशितबुद्धेः किं पुनश्चित्रमेतत्।। ५३।।

जयमाला

(दोहा)

जीवाजीव अधिकार की पूजन की सानन्द।
जयमाला में जान लो विषयवस्तु सानन्द।। १ ।।

(अडिल्ल)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय भाव जो।
शिवमग के आधार जिनागम में कहे।।
करने के हैं योग्य नियम से कार्य वे।
नियमसार के एकमात्र प्रतिपाद्य वे।। २ ।।
पद्रव्यों से भिन्न ज्ञानमय आतमा।
रागादिक से भिन्न ज्ञानमय आतमा।।
पर्यायों से पार ज्ञानमय आतमा।
भेदभाव से भिन्न सहज परमातमा।। ३ ।।
यह कारण परमातम इसके ज्ञान से।
इसमें अपनेपन से इसके ध्यान से ।।
बने कार्य परमातम हैं जो वे सभी।
सिद्धशिला में थित अनंत अक्षय सुखी।। ४ ।।
उन्हें नमन कर उनसा बनने के लिये।
अज अनंत अविनाशी अक्षय भाव में।।
अपनापन कर थापित उसमें ही रमूँ।
रत्नत्रयमय साम्यभाव धारण करूँ ।। ५ ।।
एकमात्र श्रद्धेय ध्येय निज आतमा।
एकमात्र है परमज्ञेय निज आतमा।।
ज्ञान-ध्यान-श्रद्धान इसी का धर्म है।
शिवसुख कारण यही धर्म का मर्म है।। ६ ।।

भव्यजनों का मानस इसके पाठ से।
परभावों में अपनेपन से मुक्त हो।।
अपने में आ जाय यही है भावना।
मेरा मन भी नित्य इसी में रत रहे।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री जीवाजीवाधिकाराभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरा हुआ जीवाजीव अधिकार।
आराधन से प्रगट हो ज्ञानानन्द अपार।। ८ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

भाई ! ये बननेवाले भगवान की बात नहीं, यह तो बने-बनाये भगवान की बात है। **स्वभाव की अपेक्षा तुझे भगवान बनना नहीं है, अपितु स्वभाव से तो तू बना-बनाया भगवान ही है ह्न ऐसा जानना-मानना और अपने में ही जम जाना, रम जाना पर्याय में भगवान बनने का उपाय है।**

तू एक बार सच्चे दिल से अन्तर की गहराई से इस बात को स्वीकार तो कर; अन्तर की स्वीकृति आते ही तेरी दृष्टि परपदार्थों से हटकर सहज ही स्वभाव-सन्मुख होगी, ज्ञान भी अन्तरोन्मुख होगा और तू अन्तर में ही समा जायेगा, लीन हो जायेगा, समाधिस्थ हो जायेगा।

ऐसा होने पर तेरे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा दरिया उमड़ेगा कि तू निहाल हो जावेगा, कृतकृत्य हो जावेगा। एकबार ऐसा स्वीकार करके तो देख।

- आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-८३

३

शुद्धभाव अधिकार एवं व्यवहार चारित्र अधिकार पूजन

स्थापना

(रोला)

शुद्धभाव अधिकार अलौकिक अद्भुत भाई।
शुद्धातम का प्रतिपादन है इसमें आया।।
अनन्त गुणों का गोडाउन भगवान आतमा।
पर्यायों से पार आतमा इसमें गाया।। १ ।।
पंच महाव्रत समिति गुप्ति त्रय कही गई है।
और पंचपरमेष्ठी की महिमा बतलाई।।
व्यवहार चरित के प्रकरण में यह सब कुछ आया।
इन दोनों अधिकारों की पूजन रचवाई।। २।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकारौ अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकारौ अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकारौ अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रेखता)

जल

अरे यह जल मलशोधक द्रव्य जगत में मल को धोता है।
आतमा भी मलशोधक द्रव्य स्वयं का आतम धोता है।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

अरे गर्मी का भीषण ताप हरे चन्दन का शीलस्वभाव।
अरे भव वन का भीषण ताप हरे आतम का शील स्वभाव।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अरे अक्षत अखण्ड अभिराम आतमा से अनुपम शोभें।
आतमा भी अखण्ड अनुपम मुक्तिमारग में मन मोहें।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

वासना का उत्पादक सुमन[१] सुमन[२] को विकृत कर देता।
आतमा का चिन्तन अविराम सुमन को निर्मल कर देता।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

क्षुधा की पीड़ा जग में व्याप्त सभी जन हैं उससे आक्रान्त।
आतमा के अनुभव के बिना न होगी उसकी पीड़ा शान्त।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव-व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१. पुष्प २. निर्मल मन

दीप

आतमा जग में है वह दीप न जिसमें लगे तेल–बाती।
प्रकाशित हो जावे सम्पूर्ण न इसमें कोई गंध आती।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव–व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

सुगन्धित द्रव्यों का यह चूर्ण धूप कहते हैं इसको लोग।
हटाने को जग की दुर्गन्ध किया जाता इसका उपयोग।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव–व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

पुण्य के फल में जो कुछ मिले सभी फल अर्पित करता हूँ।
आतमा के अनुभव से मिले परमफल को मैं वरता हूँ।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्रीशुद्धभाव–व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

जगत में बेश कीमती अर्घ्य विनय से अर्पित करता हूँ।
यह सब नहीं चाहिये मुझको मैं तो शिव पद वरता हूँ।।
शुद्धभावों का यह अधिकार बताया इसमें आतमराम।
और व्यवहारचरित अधिकार रे इसमें सदाचार अभिराम।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धभाव–व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। शुद्धभाव अधिकार ।।

अब शुद्धभाव अधिकार की प्रथम गाथा में शुद्धात्मा को उपादेय बताते हैं –

(हरिगीत)

जीवादि जो बहितत्त्व हैं, वे हेय हैं कर्मोपधिज।
पर्याय से निरपेक्ष आतमराम ही आदेय है।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मस्य उपादेयत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९४।।

अब टीकाकार सारभूत शुद्धात्मा की विशेषता बताते हैं –

(रोला)

सकलविलय से दूर पूर सुखसागर का जो।
क्लेशोदधि से पार शमित दुर्वारमार जो।।
शुद्धज्ञान अवतार दुरिततरु का कुठार जो।
समयसार जयवंत तत्त्व का एक सार जो।। ५४ ।।

ॐ ह्रीं सारभूतशुद्धात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९५।।

अब निर्विकल्पतत्त्व का स्वरूप बताने वाली गाथा कहते हैं –

(हरिगीत)

अरे विभाव स्वभाव हर्षाहर्ष मानपमान के।
स्थान आतम में नहीं ये वचन हैं भगवान के।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं निर्विकल्पतत्त्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९६।।

(गाथा)

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो।। ३८ ।।

(मालिनी)

जयति समयसारः सर्वतत्त्वैकसारः
सकलविलयदूरः प्रास्तदुर्वारमारः।
दुरिततरुकुठारः शुद्धबोधावतारः
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः।। ५४ ।।

(गाथा)

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा।। ३९ ।।

अब टीकाकार आत्मा की रुचि करने की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

चिदानन्द से भरा हुआ नभ सम अकृत जो।
राग–द्वेष से रहित एक अविनाशी पद है।।
चैतन्यामृत पूर चतुर पुरुषों के गोचर।
आतम क्यों न रुचे करे भोगों की वांछा।। ५५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मरुचिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९७।।

अब आत्मा में बंध व उदयस्थान नहीं हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

स्थिति अनुभाग बंध एवं प्रकृति परदेश के।
अर उदय के स्थान आतम में नहीं ह्न यह जानिये।। ४० ।।

ॐ ह्रीं बंधोदयस्थानरहित शुद्धात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।९८।।

अब टीकाकार उपरोक्त बात की सिद्धि के लिये एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

पावें न जिसमें प्रतिष्ठा बस तैरते हैं बाह्य में।
ये बद्धस्पृष्टादि सब जिसके न अन्तरभाव में।।
जो है प्रकाशित चतुर्दिक् उस एक आत्मस्वभाव का।
हे जगतजन ! तुम नित्य ही निर्मोह हो अनुभव करो।। १८।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९९।।

(शार्दुलविक्रीडित)

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख–
निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिंबाकृतावात्मनि ।
चैतन्यामृतपूरपूर्णवपुषे प्रेक्षावतां गोचरे
बुद्धिं किं न करोषि वांछसि सुखं त्वं संसृतेर्दुःकृतेः।। ५५।।

(गाथा)

णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा।। ४०।।

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्।। १८।।[१]

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द–११

अब टीकाकार स्वयं दो छन्द लिखकर आत्मानुभव की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

चिदानन्द निधियाँ बसें मुझमें नेकानेक।
विपदाओं का अपद मैं नित्य निरंजन एक।। ५६ ।।

(वसंततिलका)

निज रूप से अति विलक्षण अफल फल जो।
तज सर्व कर्म विषवृक्षज विष–फलों को।।
जो भोगता सहजसुखमय आतमा को।
हो मुक्तिलाभ उसको संशय न इसमें।। ५७ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्रदायक–आत्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१००।।

अब जीव में उपशम, क्षयोपशम, क्षय और उदयजन्य भाव नहीं हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

इस जीव के क्षायिक क्षयोपशम और उपशम भाव के।
एवं उदयगत भाव के स्थान भी होते नहीं।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं उपशमादिचतुर्भावरहितशुद्धात्मनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०१।।

(शालिनी)

नित्यशुद्धचिदानन्दसंपदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्।। ५६ ।।

(वसंततिलका)

यः सर्वकर्मविषभूरुहसंभवानि मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुंक्तेऽधुना सहजचिन्मयमात्मतत्त्वं प्राप्नोति मुक्तिमचिदारिति संशयः कः।। ५७।।

(गाथा)

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा।। ४१ ।।

अब टीकाकार स्वयं दो छन्द लिखकर आत्मानुभव की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

विरहित ग्रंथ प्रपंच से पंचाचारी संत।
पंचमगति की प्राप्ति को पंचमभाव भजंत।। ५८।।

(हरिगीत)

भोगियों के भोग के हैं मूल सब शुभकर्म जब।
तत्त्व के अभ्यास से निष्णातचित मुनिराज तब।।
मुक्त होने के लिए सब क्यों न छोड़ें कर्म शुभ।
क्यों ना भजें शुद्धातमा को प्राप्त जिससे सर्व सुख।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं भोगमूलशुभकर्मनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०२।।

अब जीव के चतुर्गति परिभ्रमण, जन्म–मरणादि नहीं हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

चतुर्गति भव भ्रमण रोग रु शोक जन्म–जरा–मरण।
जीवमार्गणथान अर कुल–योनि ना हों जीव के।। ४२ ।।

ॐ ह्रीं चतुर्गतिपरिभ्रमणजन्ममरणादिरहित शुद्धात्मनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०३।।

अब टीकाकार उपरोक्त बात की सिद्धि के लिये दो छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

चैतन्यशक्ति से रहित परभाव सब परिहार कर।
चैतन्यशक्ति से सहित निजभाव नित अवगाह कर।।

(आर्या)

अंचितपंचमगतये पंचमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
संचितपंचाचाराः किंचनभावप्रपंचपरिहीणाः।। ५८।।

(मालिनी)

सुकृतमपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परमतत्त्वाभ्यासनिष्णातचित्तः।
उभयसमयसारं सारतत्त्वस्वरूपं
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः।। ५९।।

(गाथा)

चउगइभवसंभमणं जाइजरामरणरोगसोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति।। ४२।।

है श्रेष्ठतम जो विश्व में सुन्दर सहज शुद्धातमा।
अब उसी का अनुभव करो तुम स्वयं हे भव्यातमा।। १९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१०४।।

(दोहा)

चित् शक्ति सर्वस्व जिन, केवल वे हैं जीव।
उन्हें छोड़कर और सब, पुद्गलमयी अजीव।। २० ।।

ॐ ह्रीं चैतन्यमात्रशुद्धात्मनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१०५।।

अब टीकाकार संसार विकल्पों को छोड़कर निर्विकल्प होने की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

रहे निरन्तर ज्ञानभावना निज आतम की।
जिनके वे नर भव विकल्प में नहीं उलझते।।
परपरिणति से दूर समाधि निर्विकल्प पा।
पा जाते हैं अनघ अनूपम निज आतम को।। ६० ।।

ॐ ह्रीं निर्विकल्पप्राप्तिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१०६।।

अब टीकाकार भगवान महावीर की भक्ति करते हुये एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(मालिनी)

सकलमपि विहायाह्राय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरंतं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम्।। १९ ।।[१]

(अनुष्टुभ्)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी।। २० ।।[२]

(मालिनी)

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा
व्रजति न च विकल्पं संसृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः
परपरिणतिदूरं याति चिन्मात्रमेषः।। ६० ।।

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-३५ २. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-३६

(रोला)

भक्तामर की मुकुट रत्नमाला से वंदित।
चरणकमल जिनके वे महावीर तीर्थंकर।।
का पावन उपदेश प्राप्त कर शीलपोत से।
संत भवोदधि तीर प्राप्त कर लेते सत्वर।। ६१ ।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०७।।

अब आत्मा का स्वरूप निर्दण्डादिरूप है – यह समझाते हैं –

(हरिगीत)

निर्दण्ड है निर्द्वन्द है यह निरालम्बी आतमा।
निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं निर्दण्डादिरूपात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१०८।।

अब टीकाकार उपरोक्त बात की सिद्धि के लिये एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

जो आतमा स्वरव्यंजनाक्षर–अंक के समुदाय से।
स्पर्श रस गंध रूप से अर अहित से अंधकार से।।
भूमि जल से अनल से अर अनिल की अणु राशि से।
दिगचक्र से भी रहित वह नित रहे शाश्वत भाव से।। २१ ।।

ॐ ह्रीं स्वरविकारादिरहितात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१०९।।

(स्रग्धरा)

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चितांघ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वांतविध्वंसदक्षं
एते संतो भवाब्धेरपरतटममी यांति सच्छीलपोताः।। ६१ ।।

(गाथा)

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममओ णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।। ४३ ।।

(मालिनी)

स्वरनिकरविसर्गव्यंजनाद्यक्षरैर्यद्
रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसंख्यम्।
अरसतिमिररूपस्पर्शगंधाम्बुवायु–
क्षितिपवनसखाणुस्थूलदिक्चक्रवालम्।। २१।।[१]

---

१. योगीन्द्रदेव, अमृताशीति, श्लोक ५७

अब टीकाकार आगामी सात छन्दों में आत्मा का स्वरूप समझाकर, उसके अनुभव की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

परपरिणति से दूर और दुष्कर्म पार है।
अस्तमार दुर्वार पापवन का कुठार है।।
रक्षक हो मम रागोदधि का पूर पार जो।
सुखसागरजल निर्विकार है समयसार जो ।। ६२ ।।

ॐ ह्रीं समयसारस्वरूपशुद्धात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११०।।

(रोला)

बुधजन जिनको कहें कल्पनामात्र रम्य है।
उन सुख–दुख से रहित नित्य जो निर्विकार है।।
विविध विकल्प विहीन पद्मप्रभ मुनिवर मन में।
जो संस्थित वह परमतत्त्व जयवंत रहे नित।। ६३ ।।

ॐ ह्रीं निर्विकल्पपरमतत्त्वप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१११।।

(रोला)

सर्वतत्त्व में सार मगन जो निज परिणति में।
सुखसागर में सदा खान जो गुण मणियों की।।
उस आतम को भजो निरन्तर भव्यभाव से।
भव्यभावना से प्रेरित हो भव्य आत्मन्।। ६४ ।।

ॐ ह्रीं सारभूतशुद्धात्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११२।।

दुरघवनकुठारः प्राप्तदुःकर्मपारः
परपरिणतिदूरः प्रास्तरागाब्धिपूरः।
हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः
सपदि समयसारः पातु मामस्तमारः।। ६२।।
जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म–
प्रभमुनिहृदयाब्जे संस्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्
भवभवसुखदुःखान्मुक्तमुक्तं बुधैर्यत्।। ६३।।
अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा
सहजगुणमणीनामाकरं तत्त्वसारम्।
निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं
भजतु भवविमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः।। ६४ ।।

(दोहा)

भवभोगों से पराङ्गमुख भवदुखनाशन हेतु।
ध्रुव निज आतम को भजो अध्रुव से क्या हेतु।। ६५ ।।

ॐ ह्रीं ध्रुवरूपात्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११३।।

(दोहा)

जन्म मृत्यु रोगादि से रहित अनाकुल आत्म।
अमृतमय अच्युत अमल मैं बंदूँ शुद्धात्म।। ६६ ।।

ॐ ह्रीं अनाकुलस्वरूपात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११४।।

(दोहा)

सूत्रकार मुनिराज ने आतम दियो बताय।
उससे भवि मुक्ति लहें मैं पूजूँ मन लाय।। ६७ ।।

ॐ ह्रीं उत्तमसुखप्राप्तिकारक-आत्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।११५।।

(रोला)

ज्ञानरूप अक्षय विशाल निर्द्वन्द्व अनूपम।
आदि-अन्त अर दोष रहित जो आत्मतत्त्व है।।
उसको पाकर भव्य भवजनित भ्रम से छूटें।
उसमें रमकर भव्य मुक्ति रमणी को पाते।। ६८ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मतत्त्वभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११६।।

(द्रुतविलंबित)

भवभोगपराङ्मुख हे यते पदमिदं भवहेतुविनाशनम्।
भज निजात्मनिमग्नमते पुनस्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया।। ६५।।
समयसारमनाकुलमच्युतं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम्।
सहजनिर्मलशर्मसुधामयं समरसेन सदा परिपूजये।। ६६।।

(इन्द्रवज्रा)

इत्थं निजज्ञेन निजात्मतत्त्वमुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम्।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावाम्युत्तमशर्मणेऽहम्।। ६७।।

(मालिनी)

आद्यन्तमुक्तमनघं परमात्मतत्त्वं
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम्।
तद्भावनापरिणतो भुवि भव्यलोकः
सिद्धिं प्रयाति भवसंभवदुःखदूराम्।। ६८।।

अब आत्मा का स्वरूप निर्ग्रन्थादिरूप है, यह समझाते हैं –

(हरिगीत)

निर्ग्रन्थ है नीराग है निःशल्य है निर्दोष है।
निर्मान-मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है।। ४४ ।।

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थादिरूपात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११७।।

अब उपरोक्त बात की सिद्धि के लिये एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(मनहरण कवित्त)

इस भाँति परपरिणति का उच्छेद कर।
करता-करम आदि भेदों को मिटा दिया।।
इस भाँति आतमा का तत्त्व उपलब्ध कर।
कल्पनाजन्य भेदभाव को मिटा दिया।।
ऐसा यह आतमा चिन्मात्र निरमल।
सुखमय शान्तिमय तेज अपना लिया।।
आपनी ही महिमामय परकाशमान।
रहेगा अनंतकाल जैसा सुख पा लिया।। २२ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११८।।

अब टीकाकार एक छन्द लिखकर निजकारण परमात्मा की वन्दना करते हैं –

(गाथा)

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा।। ४४।।

(मंदाक्रान्ता)

इत्युच्छेदात्परपरिणतेः कर्तृकर्मादिभेद-
भ्रान्तिध्वंसादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं
स्थास्यत्युद्यत्सहजमहिमा सर्वदा मुक्त एव।। २२।।[1]

---

१. प्रवचनसार : तत्त्वप्रदीपिका, छन्द-८

(मनहरण कवित्त)

ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अंधकार का।
नाशक ध्रुव नित्य आनन्द का है धारक जो।।
अमूरतिक आतमा अत्यन्त अविचल।
स्वयं में ही उत्तम सुशील का है कारक जो।।
भवभयहरण पति मोक्षलक्ष्मी का अति।
ऐश्वर्यवान नित्य आतम विलासी जो।।
करता हूँ वंदना मैं आत्मदेव की सदा।
अलख अखण्ड पिण्ड चण्ड अविनाशी जो।। ६९ ।।

ॐ ह्रीं निजकारणपरमात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।११९।।

अब आत्मा को वर्णादि से रहित अरस-अरूपादिरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

स्पर्श रस गंध वर्ण एवं संहनन संस्थान भी।
नर, नारि एवं नपुंसक लिंग जीव के होते नहीं।। ४५।।
चैतन्यगुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अर्निदिष्ट अशब्द है।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं वर्णादिरहित-अरसादिरूपात्मनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२०।।

अब टीकाकार उक्त बात की सिद्धि के लिये एक छन्द उद्धृत करते हैं -

---

(मंदाक्रांता)

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसंघातकात्मा
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम्।। ६९।।

(गाथा)

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति।। ४५।।
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।। ४६।।

(रोला)

जड़ कर्मों से भिन्न आतमा होता है ज्यों।
भावकर्म से भिन्न आतमा होता है त्यों।।
सभी स्वयं के गुण–पर्यायों से अभिन्न हैं।
परद्रव्यों से भिन्न सदा सब ही होते हैं।। २३ ।।

ॐ ह्रीं परद्रस्यगुणपर्यायरहितात्मद्रव्यनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२१।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(रोला)

अरे बंध हो अथवा न हो शुद्धजीव तो।
सदा भिन्न ही विविध मूर्त द्रव्यों से जानो।।
बुधपुरुषों से कहे हुए जिनदेव वचन इस।
परमसत्य को भव्य आतमा तुम पहिचानो।। ७० ।।

ॐ ह्रीं विविधमूर्तद्रव्यरहितशुद्धात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२२।।

अब संसारी और सिद्ध जीवों में कुछ भी अन्तर नहीं है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

गुण आठ से हैं अलंकृत अर जन्म–मरण–जरा नहीं।
हैं सिद्ध जैसे जीव त्यों भवलीन संसारी कहे।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं सिद्ध–संसारीभेदनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१२३।।

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्न तथैव।
कालक्षेत्रप्रमुखमपि यतच्च भिन्नं मतं मे
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालंकृतं सर्वमेतत्।। २३ ।।[1]

(मालिनी)

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्
रहितमखिलमूर्त्तद्रव्यजालं विचित्रम्।
इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां
भुवनविदितमेतद्भव्य जानीहि नित्यम्।। ७० ।।

(गाथा)

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जरमरणजम्ममुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण।। ४७ ।।

---

१. पद्मनन्दि पंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, छन्द–७९

अब टीकाकार सुबुद्धि-कुबुद्धि के भेद का निषेध करते हैं -

(दोहा)

पहले से ही शुद्धता जिनमें पाई जाय।
उन सुधिजन कुधिजनों में कुछ भी अंतर नाय।।
किस नय से अन्तर करूँ उनमें समझ न आय।
मैं पूँछूँ इस जगत से देवे कोई बताय।। ७१ ।।

ॐ ह्रीं सुबुद्धि-कुबुद्धिभेदनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१२४।।

अब कार्यसमयसार और कारणसमयसार में कोई अन्तर नहीं है, यह बताते हैं - (हरिगीत)

शुद्ध अविनाशी अतीन्द्रिय अदेह निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे जीव हैं भवलीन त्यों।। ४८ ।।

ॐ ह्रीं कार्य-कारणसमयसारभेदनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२५।।

अब सार-असार जानने वाले सम्यग्दृष्टि का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं -

(हरिगीत)

शुद्ध है यह आतमा अथवा अशुद्ध इसे कहें।
अज्ञानि मिथ्यादृष्टि के ऐसे विकल्प सदा रहें।।
कार्य-कारण शुद्ध सारासारग्राही बुद्धि से।
जानते सद्दृष्टि उनकी वंदना हम नित करें।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टिस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१२६।।

(अनुष्टुभ्)

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्।। ७१ ।।

(गाथा)

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया॥ ४८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं
शुद्धं कारणकार्यतत्त्वयुगलं सम्यदृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक स्वयं
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्।। ७२।।

अब उपरोक्त तथ्य को निश्चय-व्यवहारनय की भाषा में प्रस्तुत करते हैं -

(हरिगीत)

व्यवहारनय से कहे हैं ये भाव सब इस जीव के।
पर शुद्धनय से सिद्धसम हैं जीव संसारी सभी।। ४९ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारनयेन जीवस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२७।।

अब टीकाकार इस संदर्भ में एक छन्द उद्धृत करते हैं -

(हरिगीत)

ज्यों दुर्बल को लाठी है हस्तावलम्ब त्यों।
उपयोगी व्यवहार सभी को अपरमपद में।।
पर उपयोगी नहीं रंच भी उन लोगों को।
जो रमते हैं परम-अर्थ चिन्मय चिद्घन में।। २४ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारस्य भूतार्थ-अभूतार्थत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२७।।

अब टीकाकार शुद्धतत्त्व की मीमांसा प्रस्तुत करते हैं -

(दोहा)

संसारी अर सिद्ध में अन्तर नहीं है रंच।
शुद्धतत्त्व के रसिकजन बतलाते यह मर्म।। ७३ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धतत्त्वस्य मीमांसाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१२८।।

(गाथा)

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पहुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा।। ४९ ।।

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित्।। २४।।[1]

(स्वागता)

शुद्धनिश्चययेन विमुक्तौ संसृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्वविचारे शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति।। ७३।।

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-५

अब परद्रव्य हेय हैं और स्वद्रव्य उपादेय हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

हैं हेय ये परभाव सब ही क्योंकि ये परद्रव्य हैं।
आदेय अन्तस्तत्त्व आतम क्योंकि वह स्वद्रव्य है।। ५० ।।

ॐ ह्रीं परद्रव्य-स्वद्रव्य हेयोपादेयत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२९।।

अब टीकाकार इस संदर्भ में एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

मैं तो सदा ही शुद्ध परमानन्द चिन्मयज्योति हूँ।
सेवन करें सिद्धान्त यह सब ही मुमुक्षु बन्धुजन।।
जो विविध परभाव मुझ में दिखें वे मुझ से पृथक्।
वे मैं नहीं हूँ क्योंकि वे मेरे लिए परद्रव्य हैं।। २५।।

ॐ ह्रीं मोक्षप्रदायकसिद्धान्तनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३०।।

अब शुद्धजीवास्तिकाय का श्रद्धान करने वाले ही आत्मोपलब्धि करते हैं, यह बताते हैं – (सोरठा)

वे न हमारे भाव, शुद्धातम से अन्य जो।
ऐसे जिनके भाव, सिद्धि अपूरव वे लहें।। ७४ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धजीवास्तिकायरूप-आत्मोपलब्धिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३१।।

(गाथा)

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा।। ५०।।

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एतेये तु समुल्लसंति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि।। २५।।[१]

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकायादन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदीसिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम्।। ७४।।

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-१८५

अब आत्मा के आश्रय से होने वाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप समझाते हैं - (हरिगीत)

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
विभरम संशय मोह विरहित ज्ञान ही सद्ज्ञान है।। ५१ ।।
चल मल अगाढ़पने रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।
आदेय हेय पदार्थ का ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।। ५२ ।।
जिन सूत्र समकित हेतु पर जो सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
वे अंतरंग निमित्त हैं दृग मोह क्षय के हेतु से।। ५३ ।।
सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान पूर्वक आचरण है मुक्तिमग।
व्यवहार-निश्चय से अत: चारित्र की चर्चा करूँ।। ५४ ।।
व्यवहारनय चारित्र में व्यवहारनय तपचरण हो।
नियतनय चारित्र में बस नियतनय तपचरण हो।। ५५ ।।

ॐ ह्रीं निश्चय-व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३२।।

अब टीकाकार उक्त संदर्भ में एक छन्द उद्धृत करते हैं -

(दोहा)

आत्मबोध ही बोध है, निश्चय दर्शन जान।
आत्मस्थिति चारित्र है युति शिवमग पहचान।। २६ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयमोक्षमार्गनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३३।।

(गाथा)

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविविज्जियं होदि सण्णाणं।। ५१ ।।
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मतं।
अधिगमभावो णाणं हेयोवादेयतच्चाणं।। ५२ ।।
सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी।। ५३ ।।
सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहारणिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि।। ५४ ।।
ववहारणयचरिते ववहारणयस्य होदि तवचरणं।
णिच्छयणयचारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो।। ५५ ।।

(अनुष्टुभ्)

दर्शनं निश्चय: पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योग: शिवाश्रय:।। २६ ।।[1]

---

१. पद्मनन्दिपंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, श्लोक-१४

अब टीकाकार अंत में स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

जयवंत है सद्बोध अर सद्दृष्टि भी जयवंत है।
अर चरण भी सुविशुद्ध जो वह भी सदा जयवंत है।।
अर पापपंकविहीन सहजानन्द आतमतत्त्व में।
ही जो रहे, वह चेतना भी तो सदा जयवंत है।। ७५ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३४।।

।। व्यवहार चारित्र अधिकार ।।

इस व्यवहार चारित्र अधिकार में अहिंसादि पाँचव्रतों की चर्चा करते हैं, सबसे पहले अहिंसाव्रत की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

कुल योनि जीवस्थान मार्गणथान जिय के जानकर।
उन्हीं के आरंभ से बचना अहिंसाव्रत कहा।। ५६ ।।

ॐ ह्रीं अहिंसाव्रतनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३५।।

अब उक्त बात की सिद्धि के लिये टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

अहिंसा परमब्रह्म है सारा जगत यह जानता।
अर गृहस्थ आश्रम में सदा आरंभ होता नियम से।।

(मालिनी)

जयति सहजबोधस्तादृशी दृष्टिरेषा
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपंकानीकनिर्मुक्तमूर्तिः
सहजपरमतत्त्वे संस्थिता चेतना च।। ७५।।

(गाथा)

कुलजोणिजीवमग्गणठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं।
तस्सारं भणियत्तणपरिणामो होइ पढमवदं।। ५६।।

बस इसलिए नमिदेव ने दो विध परिग्रह त्यागकर।
छोड़ विकृत वेश सब निर्ग्रन्थपन धारण किया।। २७ ।।

ॐ ह्रीं परमब्रह्म-अहिंसाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३६।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

त्रसघात के परिणाम तम के नाश का जो हेतु है।
और थावर प्राणियों के विविध वध से दूर है।।
आनन्द सागरपूर सुखप्रद प्राणियों को लोक के।
वह जैनदर्शन जगत में जयवंत वर्ते नित्य ही।। ७६ ।।

ॐ ह्रीं जिनधर्मस्ययशोगाननिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३७।।

अब सत्यव्रत का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

मोह एवं राग-द्वेषज मृषा भाषण भाव को।
हैं त्यागते जो साधु उनके सत्यभाषण व्रत कहा।। ५७ ।।

ॐ ह्रीं सत्यव्रतनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३८।।

अब टीकाकार सत्यवचनों को बोलने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जो पुरुष बोलें सत्य अति स्पष्ट वे सब स्वर्ग की।
देवांगनाओं के सुखों को भोगते भरपूर हैं।।

(शिखरिणी)

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः।। २७।।[1]

(मालिनी)

त्रसहतिपरिणामध्वांतविध्वंसहेतुः
सकलभुवनजीवग्रामसौख्यप्रदो यः।
स जयति जिनधर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां
विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः।। ७६ ।।

(गाथा)

रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं।
जो पजहदि साहु सया बिदियवदं होइ तस्सेव।। ५७ ।।

---

१. बृहत् स्वयंभूस्तोत्र : ११९वाँ छन्द, नेमिनाथ भगवान की स्तुति।

इस लोक में भी सज्जनों से पूज्य होते वे पुरुष।
इसलिए इस सत्य से बढकर न कोई व्रत कहा।। ७७ ।।

ॐ ह्रीं सत्यवचनप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३९।।

अब अचौर्यव्रत का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

ग्राम में वन में नगर में देखकर परवस्तु जो।
उसके ग्रहण का भाव त्यागे तीसरा व्रत उसे हो।। ५८ ।।

ॐ ह्रीं अचौर्यव्रतनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४०।।

अब टीकाकार अचौर्यव्रत को परम्परा से मुक्ति का कारण बताते हैं –

(हरिगीत)

अचौर्यव्रत इस लोक में धन सम्पदा का हेतु है।
परलोक में देवांगनाओं के सुखों का हेतु है।।
शुद्ध एवं सहज निर्मल परिणति के संग से।
परम्परा से मुक्तिवधु का हेतु भी कहते इसे।। ७८ ।।

ॐ ह्रीं परम्परामुक्तिप्रदायक-अचौर्यव्रतप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४१।।

अब ब्रह्मचर्य नामक चौथे व्रत की चर्चा करते हैं –

(शालिनी)

वक्ति व्यक्तं सत्यमुच्चैर्जनो यः
स्वर्गस्त्रीणां भूरिभोगैकभाक् स्यात्।
अस्मिन् पूज्यः सर्वदा सर्वसद्भिः
सत्यासत्यं चान्यदस्ति व्रतं किम्।। ७७ ।।

(गाथा)

गामे वा णयरे वाऽरण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुयदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव।। ५८ ।।

(आर्या)

आकर्षति रत्नानां संचयमुच्चैरचौर्य्यमेतदिह।
स्वर्गस्त्रीसुखमूलं क्रमेण मुक्त्यंगनायाश्च।। ७८ ।।

(हरिगीत)

देख रमणी रूप वांछा भाव से निर्वृत्त हो।
या रहित मैथुनभाव से है वही चौथा व्रत अहो।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यव्रतनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४२।।

अब टीकाकार खेद व्यक्त करते हुये एक छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

कामी पुरुष यदि तू सदा ही कामनी की देह के।
सौन्दर्य के संबंध में ही सोचता है निरन्तर।।
तेरे लिये मेरे वचन किस काम के किस हेतु से।
निज रूप को तज मोह में तू फंस रहा है निरन्तर।। ७९ ।।

ॐ ह्रीं कामसेवननिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४३।।

अब परिग्रहत्यागव्रत का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

निरपेक्ष भावों पूर्वक सब परिग्रहों का त्याग ही।
चारित्रधारी मुनिवरों का पाँचवाँ व्रत कहा है।। ६० ।।

ॐ ह्रीं परिग्रहत्यागव्रतनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४४।।

(गाथा)

दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभावं णियत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं।। ५९ ।।

(मालिनी)

भवति तनुविभूतिः कामिनीनां विभूतिं
स्मरसि मनसि कामिंस्त्वं तदा मद्वचः किम्।
सहजपरमतत्त्वं स्वस्वरूपं विहाय
व्रजसि विपुलमोहं हेतुना केन चित्रम्।। ७९।।

(गाथा)

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचमवदमिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स।। ६० ।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

यदि परिग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे।
पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नहीं।। २८ ।।

ॐ ह्रीं समस्तपरिग्रहेण निर्ममत्वज्ञानिस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४५।।

अब टीकाकार एक छन्द लिखकर परिग्रह के त्याग करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

हे भव्यजन ! भवभीरुता बस परिग्रह को छोड़ दो।
परमार्थ सुख के लिए निज में अचलता धारण करो।।
जो जगतजन को महादुर्लभ किन्तु सज्जन जनों को।
आश्चर्यकारी है नहीं आश्चर्य दुर्जन जनों को।। ८० ।।

ॐ ह्रीं परिग्रहत्यागप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४६।।

पाँच व्रतों की चर्चा करने के उपरान्त अब पाँच समितियों में से पहली ईर्यासमिति की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

जिन श्रमण धुरा प्रमाण भूलख चले प्रासुक मार्ग से।
दिन में करें विहार नित ही समिति ईर्या यह कही।। ६१ ।।

ॐ ह्रीं ईर्यासमितिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४७।।

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ।। २८ ।।[1]

(हरिणी)

त्यजतु भवभीरुत्वाद्भव्यः परिग्रहविग्रहं
निरुपमसुखावासप्राप्त्यै करोतु निजात्मनि।
स्थितिमविचलां शर्माकारां जगज्जनदुर्लभां
न च भवति महाच्चित्रं चित्रं सतामसताभिदम्।। ८० ।।

(गाथा)

पासुगमग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि।
मच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स।। ६१ ।।

---

१. समयसार, गाथा – २०८

अब टीकाकार ईर्यासमिति की महिमा बताने के लिये चार छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

मुक्तिकान्ता की सखी जो समिति उसको जानकर।
जो संत कंचन–कामिनी के संग को परित्याग कर।।
चैतन्य में ही रमण करते नित्य निर्मल भाव से।
विलग जग से निजविहारी मुक्त ही हैं संत वे।। ८१ ।।

ॐ ह्रीं ईर्यासमितिधारकसंतप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१४८।।

(हरिगीत)

जयवंत है यह समिति जो त्रस और थावर घात से।
संसारदावानल भयंकर क्लेश से अतिदूर है।।
मुनिजनों के शील की है मूल धोती पाप को।
यह मेघमाला सींचती जो पुण्यरूप अनाज को।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं त्रसस्थावरघातनिवारक ईर्यासमितिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४९।।

(हरिगीत)

समिति विरहित काम रोगी जनों का दुर्भाग्य यह।
संसार–सागर में निरंतर जन्मते–मरते रहें।।
हे मुनिजनो ! तुम हृदयघर में सावधानी पूर्वक।
जगह समुचित सदा रखना मुक्ति कन्या के लिए।। ८३ ।।

ॐ ह्रीं मुनिनः ईर्यासमितिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५०।।

(मंदाक्रांता)

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो।
मुक्त्वा संगं भवभयकरं हेमरामात्मकं च।
स्थित्वाऽपूर्वे सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे
भेदाभावे समयति च सः सर्वदा मुक्त एव।। ८१।।

(मालिनी)

जयति समितिरेषां शीलमूलं मुनीनां
त्रसहतिपरिदूरा स्थावराणां हतेर्वा।
भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला
सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी।। ८२।।
नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्
समितिविरहितानां कामरोगातुराणाम्।
मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनोगेहमध्ये
ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्तेः।। ८३।।

(दोहा)

जो पाले निश्चय समिति, निश्चित मुक्ति जाँहि।
समिति भ्रष्ट तो नियम से भटकें भव के माँहि।। ८४ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्राप्तिकारक ईर्यासमितिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५१।।

अब भाषा समिति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

परिहास चुगली और निन्दा तथा कर्कश बोलना।
यह त्यागना ही समिति दूजी स्व–पर हितकर बोलना।। ६२ ।।

ॐ ह्रीं भाषासमितिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५२।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(वीर)

जान लिये हैं सभी तत्त्व अर दूर सर्व सावद्यों से।
अपने हित में चित्त लगाकर सब प्रकार से शान्त हुए।।
जिनकी वाणी स्वपर हितकरी संकल्पों से मुक्त हुए।
मुक्ति भाजन क्यों न हो जब सब प्रकार से मुक्त हुए।। २९ ।।

ॐ ह्रीं भाषासमितिमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५३।।

अब टीकाकार आत्मज्ञानी मुनिराज का स्वरूप बताते हैं –

(आर्या)

निश्चरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभाग्भवेन्मोक्षः।
बत न च लभतेऽपायात् संसारमहार्णवे भ्रमति।। ८४।।

(गाथा)

पेसुगणहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
परिचत्ता सपरहिदं भासासमिदी वदंतस्स।। ६२।।

(मालिनी)

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः
स्वहितनिहितचित्ताः शांतसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्पुक्ताः
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः।। २९।।[१]

---

१. आत्मानुशासन, छन्द–२२६

(दोहा)

आत्मनिरत मुनिवरों के अन्तर्जल्प विरक्ति।
तब फिर क्यों होगी अरे बहिर्जल्प अनुरक्ति।। ८५ ।।

ॐ ह्रीं अन्तर्बाह्यविकल्परहित-आत्मज्ञानीमुनिराजनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५४।।

अब एषणा समिति की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

स्वयं करना कराना अनुमोदना से रहित जो।
निर्दोष प्रासुक भुक्ति ही है एषणा समिति अहो।। ६३ ।।

ॐ ह्रीं एषणासमितिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५५।।

अब टीकाकार उक्त बात की सिद्धि के लिये दो गाथा और एक संस्कृत छन्द को उद्धृत करते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

लेप कवल मन ओज अर कर्म और नो कर्म।
छह प्रकार आहार के कहे गये जिनधर्म।। ३० ।।

ॐ ह्रीं आहारभेदनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५६।।

(हरिगीत)

अरे भिक्षा मुनिवरों की एषणा से रहित हो।
वे यतीगण ही कहे जाते हैं अनाहारी श्रमण।। ३१ ।।

ॐ ह्रीं अनाहारीश्रमणनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५७।।

(अनुष्टुभ्)

परब्रह्मण्यनुष्ठाननिरतानां मनीषिणाम्।
अन्तरैरप्यलं जल्पैः बहिर्जल्पैश्च किं पुनः।। ८५।।

(गाथा)

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी।। ६३ ।।

णोकम्मकम्महारो लेप्पाहारो य कवलमाहारो।
उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।। ३० ।।[1]
जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा।
अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा।। ३१ ।।[2]

---

१. अनुपलब्ध २. अनुपलब्ध

(हरिगीत)

जो सभी के प्रति दया समता समाधि के भाव से।
नित्य पाले यम-नियम अर शान्त अन्तर बाह्य से।।
शास्त्र के अनुसार हित-मित असन निद्रा नाश से।
वे मुनीजन ही जला देते क्लेश के जंजाल को।। ३२।।

ॐ ह्रीं समितिधारीमुनिराजस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५८।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(हरिगीत)

भक्त के हस्ताग्र से परिशुद्ध भोजन प्राप्त कर।
परिपूर्ण ज्ञान प्रकाशमय निज आत्मा का ध्यान धर।।
इसतरह तप तप तपस्वी निरन्तर निज में मगन।
मुक्तिरूपी अंगना को प्राप्त करते संतजन।। ८६।।

ॐ ह्रीं एषणासमितिमहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५९।।

अब आदान-निक्षेपण समिति का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

पुस्तक कमण्डल संत जन नित सावधानीपूर्वक।
आदाननिक्षेपणसमिति में ग्रहण-निक्षेपण करें।। ६४।।

ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १६०।।

(मालिनी)

यमनियमनितान्तः शांतबाह्यान्तरात्मा
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकंपी।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः।। ३२।।[१]

(शालिनी)

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम्।
तप्त्वा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी प्राप्नोतीद्धां मुक्तिवारांगनां सः।। ८६।।

(गाथा)

पोत्थइकमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो।
आदावणणिक्खेवणसमिदी होदि त्ति णिद्दिट्ठा।। ६४।।

---

१. आत्मानुशासन, छन्द - २२७

अब टीकाकार आदाननिक्षेपणसमिति को धारण करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

उत्तम परमजिन मुनि के सुख–शान्ति अर मैत्री सहित।
आदाननिक्षेपण समिति सब समितियों में शोभती।।
हे भव्यजन ! तुम सदा ही इस समिति को धारण करो।
जिससे तुम्हें भी प्राप्त हो प्रियतम परम श्री कामिनी।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६१।।

अब प्रतिष्ठापनासमिति का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

प्रतिष्ठापन समिति में उस भूमि पर मल मूत्र का।
क्षेपण करें जो गूढ प्रासुक और हो अवरोध बिन।। ६५ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिष्ठापनासमितिस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६२।।

अब टीकाकार तीन छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

आत्मचिंतन में परायण और जिनमत में कुशल।
उन यतिवरों को यह समिति है मूल शिव साम्राज्य की।।
कामबाणों से विंधे हैं हृदय जिनके अरे उन।
मुनिवरों के यह समिति तो हमें दिखती ही नहीं।। ८८ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिप्रदायकप्रतिष्ठापनासमितिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६३।।

(मालिनी)

समितिषु समितीयं राजते सोत्तमानां
परमजिनमुनीनां संहतौ क्षांतिमैत्री।
त्वमपि कुरु मनःपंकेरुहे भव्य नित्यं
भवसि हि परमश्रीकामिनीकांतकांतः।। ८७।।

(गाथा)

पासुगभूमिपदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठासमिदी हवे तस्स।। ६५।।

(मालिनी)

समितिरिह यतीनां मुक्तिसाम्राज्यमूलं
जिनमतकुशलानां स्वात्मचिंतापराणाम्।
मधुसुखनिशितास्त्रव्रातसंभिन्नचेतःह्व
सहितमुनिगणानां नैव सा गोचरा स्यात्।। ८८।।

(रोला)

दीक्षाकान्तासखी परमप्रिय मुक्तिरमा को।
भवतपनाशक चन्द्रप्रभसम श्रेष्ठ समिति जो।।
उसे जानकर हे मुनि तुम जिनमत प्रतिपादित।
तप से होनेवाले फल को प्राप्त करोगे।। ८९ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिष्ठापनासमितिमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६४।।

(दोहा)

समिति सहित मुनिवरों को उत्तम फल अविलम्ब।
केवल सौख्य सुधामयी अकथित और अचिन्त्य।। ९० ।।

ॐ ह्रीं समितिफलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६५।।

अब महाव्रत और समिति की चर्चा करने के उपरान्त अब गुप्ति का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

मोह राग द्वेष संज्ञा कलुषता के भाव जो।
इन सभी का परिहार मनगुप्ति कहा व्यवहार से।। ६६ ।।

ॐ ह्रीं मनोगुप्तिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६६।।

अब टीकाकार मनोगुप्तिसहित मुनिराज का स्वरूप बताते हैं –

(रोला)

जो जिनेन्द्र के चरणों को स्मरण करे नित।
बाह्य और आन्तरिक ग्रंथ से सदा रहित हैं।।

(हरिणी)

समितिसमितिं बुद्ध्वा मुक्त्यंगनाभिमतामिमां
भवभवभयध्वांतप्रध्वंसपूर्णशशिप्रभाम् ।
मुनिप तव सद्दीक्षाकान्तासखीमधुना मुदा
जिनमततपःसिद्धं यायाः फलं किमपि ध्रुवम् ।। ८९ ।।

(द्रुतविलंबित)

समितिसंहतितः फलमुत्तमं सपदि याति मुनिः परमार्थतः।
न च मनोवचसामपि गोचरं किमपि केवलसौख्यसुधामयम्।। ९० ।।

(गाथा)

कालुस्समोहसण्णारागद्दोसाइअसुहभावाणं ।
परिहारो मणुगुत्ती ववहारणयेण परिकहियं।। ६६ ।।

परमागम के अर्थों में मन चिन्तन रत है।
उन जितेन्द्रियों के तो गुप्ति सदा ही होगी।। ९१ ।।

ॐ ह्रीं मनोगुप्तिसहितमुनिराजस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६७।।

अब वचनगुप्ति का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

पापकारण राज दारा चोर भोजन की कथा।
मृषा भाषण त्याग लक्षण है वचन की गुप्ति का।। ६७ ।।

ॐ ह्रीं वचनगुप्तिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६८।।

अब टीकाकार उक्त बात की सिद्धि के लिये एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(सोरठा)

छोड़ो अन्तर्जल्प बहिर्जल्प को छोड़कर।
दीपक आतमराम यही योग संक्षेप में।। ३३ ।।

ॐ ह्रीं अन्तर्बहिर्वचनत्यागप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६९।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(रोला)

भवभयकारी वाणी तज शुध सहज विलसते।
एकमात्र कर ध्यान नित्य चित् चमत्कार का ।।

(मालिनी)

गुप्तिर्भविष्यति सदा परमागमार्थ–
चिंतासनाथमनसो विजितेन्द्रियस्य।
बाह्यान्तरंगपरिषंगविवर्जितस्य
श्रीमज्जिनेन्द्रचरणस्मरणान्वियतस्य।। ९१ ।।

(गाथा)

थीराजचोरभत्तकहादिवयणस्स पावहेउस्स।
परिहारो वयगुत्ती अलियादिणियत्तिवयणं वा।। ६७ ।।

(अनुष्टुभ्)

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः।। ३३ ।।[१]

---

१. पूज्यपाद : समाधितंत्र, श्लोक–१७

पापतिमिर का नाश सहज महिमा निजसुख की।
मुक्तिपुरी को प्राप्त करें भविजीव निरन्तर।। ९२ ।।

ॐ ह्रीं अन्तर्बहिर्वचनत्यागप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७०।।

अब कायगुप्ति का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

मारन प्रसारन बंध छेदन और आकुंचन सभी।
कायिक क्रियाओं की निवृत्ति कायगुप्ति जिन कही।। ६८ ।।

ॐ ह्रीं कायगुप्तिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७१।।

अब टीकाकार कायगुप्ति की महिमा बताने वाला एक कलश काव्य लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

जो ध्यावे शुद्धात्मा तज कर काय विकार।
जन्म सफल है उसी का शेष सभी संसार।। ९३ ।।

ॐ ह्रीं कायगुप्तिमहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७२।।

व्यवहार से गुप्ति का वर्णन करने के उपरान्त अब निश्चय से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की चर्चा करते हैं – (हरिगीत)

मनोगुप्ति हृदय से रागादि का मिटना अहा।
वचनगुप्ति मौन अथवा असत् न कहना कहा।। ६९ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयमनोवचनगुप्तिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७३।।

(मंदाक्रान्ता)

त्यक्त्वा वाचं भवभयकरीं भव्यजीवः समस्तां
ध्यात्वा शुद्धं सहजविलसच्चिमत्कारमेकम्।
पश्चान्मुक्तिं सहजमहिमानंदसौख्याकरीं तां
प्राप्नोत्युच्चैः प्रहतदुरितध्वांतसंघतारूपः।। ९२ ।।

(गाथा)

बंधणछेदणमारण आकुंचण तह पसारणादीया।
कायकिरियाणियत्ती णिद्दिट्ठा कायगुप्ति त्ति।। ६८ ।।

(अनुष्टुभ्)

मुक्त्वा कायविकारं यः शुद्धात्मानं मुहुर्मुहः।
संभावयति तस्यैव सफलं जन्म संसृतौ।। ९३ ।।

(गाथा)

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तं मणोगुत्ती।
अलियादि णियत्तिं वा मोणं वा होइ वइगुत्ती।। ६९ ।।

अब टीकाकार निश्चयमनोगुप्ति और वचनगुप्ति की महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

अप्रशस्त और प्रशस्त सब मनवचन के समुदाय को।
तज आत्मनिष्ठा में चतुर पापाटवी दाहक मुनी।।
चिन्मात्र चिन्तामणि शुद्धाशुद्ध विरहित प्राप्त कर।
अनंतदर्शनज्ञानसुखमय मुक्ति की प्राप्ति करें।। ९४ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयमनोवचनगुप्तिमहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७४।।

अब निश्चयकायगुप्ति का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

दैहिक क्रिया की निर्वृत्ति तनगुप्ति कायोत्सर्ग है।
या निवृत्ति हिंसादि की ही कायगुप्ति जानना।। ७० ।।

ॐ ह्रीं निश्चयकायगुप्तिस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७५।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(सोरठा)

दैहिक क्रिया कलाप भव के कारण भाव सब।
तज निज आतम माँहि रहना कायोत्सर्ग है।। ३४ ।।

ॐ ह्रीं कायोत्सर्गस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७६।।

(शार्दूलविक्रीडित)

शस्ताशस्तमनोवचस्समुदयं त्यक्त्वात्मनिष्ठापरः
शुद्धाशुद्धनयातिरिक्तमनघं चिन्मात्रचिन्तामणिम्।
प्राप्यानंतचतुष्टयात्मकतया सार्धं स्थितां सर्वदा
जीवन्मुक्तिमुपैति योगितिलकः पापाटवीपावकः।। ९४।।

(गाथा)

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती।
हिंसाइणियत्ती वा सरीरगुत्ति त्ति णिद्दिट्ठा।। ७०।।

(अनुष्टुभ्)

उत्सृज्य कायकर्माणि भावं च भवकारणम्।
स्वात्मावस्थानमव्यग्रं कायोत्सर्गं स उच्यते।। ३४।।[१]

---

१. तत्त्वानुशासन, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(दोहा)

परिस्पन्दमय देह यह मैं हूँ अपरिस्पन्द।
यह मेरी ह्न व्यवहार यह तजू इसे अविलम्ब।। ९५।।

ॐ ह्रीं व्यवहारत्यागनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७७।।

अब अरहंतादि पंचपरमेष्ठियों की चर्चा आरंभ करते हैं, सबसे पहले अरहंत परमेष्ठी का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

अरिहंत केवलज्ञान आदि गुणों से संयुक्त हैं।
घनघाति कर्मों से रहित चौतीस अतिशय युक्त हैं।। ७१ ।।

ॐ ह्रीं अरहन्तपरमेष्ठीस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७८।।

अब टीकाकार पाँच छन्द लिखते हैं, जिनमें भगवान पद्मप्रभु की स्तुति की गई हैं –

(हरिगीत)

विकसित कमलवत नेत्र पुण्य निवास जिनका गोत्र है।
हैं पण्डिताम्बुज सूर्य मुनिजन विपिन चैत्र वसंत हैं।।
जो कर्मसेना शत्रु जिनका सर्वहितकर चरित है।
वे सुत सुसीमा पद्मप्रभजिन विदित तन सर्वत्र हैं।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं श्रीसुसीमासुपुत्रपद्मप्रभजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७९।।

(अनुष्टुभ्)

अपरिस्पन्दरूपस्य परिस्पन्दात्मिका तनुः।
व्यवहाराद्भवेन्मेऽतस्त्यजामि विकृतिं तनोः।। ९५।।

(गाथा)

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया।
चोत्तिसअदिसयजुत्ता अरिहंता एरिया होंति।। ७१।।

(मालिनी)

जयति विदितगात्रः स्मेरनीरेजनेत्रः
सुकृतनिलयगोत्रः पण्डिताम्भोजमित्रः।
मुनिजनवनचैत्रः कर्मवाहिन्यमित्रः
सकलहितचरित्रः श्रीसुसीमासुपुत्रः।। ९६।।

(हरिगीत)

जो गुणों के समुदाय एवं पुण्य कमलों के रवि।
कामना के कल्पतरु अर कामगज को केशरी।।
देवेन्द्र जिनको नमें वे जयवन्त श्री जिनराजजी।
हे कर्मतरु के बीजनाशक तजा भव तरु आपने।। ९७ ।।

ॐ ह्रीं श्रीकल्पवृक्षसमजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८०।।

(हरिगीत)

दुष्कर्म के यमराज जीता काम शर को आपने।
राजेन्द्र चरणों में नमें रिपु क्रोध जीता आपने।।
सर्वविद्याप्रकाशक भवताप नाशक आप हो।
अरहंत जिन जयवंत जिनको सदा विद्वद्‌जन नमें।। ९८ ।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वविद्याप्रदीपजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८१।।

(हरिगीत)

पद्मपत्रों सम नयन दुष्कर्म से जो पार हैं।
दक्ष हैं विज्ञान में अर यक्षगण जिनको नमें।।
बुधजनों के गुरु एवं मुक्ति जिनकी विदित है।
कामनाशक जगप्रकाशक जगत में जयवंत हैं।। ९९ ।।

ॐ ह्रीं श्रीतत्त्वविज्ञानदक्षजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८२।।

(मालिनी)

स्मरकरिमृगराजः पुण्यकंजाह्निराजः
सकलगुणसमाजः सर्वकल्पावनीजः।
स जयति जिनराजः प्रास्तदुःकर्मबीजः
पदनुतसुरराजस्त्यक्तसंसारभूजः ।। ९७ ।।
जितरपिपतिचापः सर्वविद्याप्रदीपः
परिणतसुखरूपः पापकीनाशरूपः।
हतभवपरितापः श्रीपदानम्रभूपः
स जयति जितकोपः प्रह्वविद्वत्कलापः।। ९८।।
जयति विदितमोक्षः पद्मपत्रायताक्षः
प्रजितदुरितकक्षः प्रास्तकंदर्पपक्षः।
पदयुगनतयक्षः तत्त्वविज्ञानदक्षः
कृतबुधजनशिक्षः प्रोक्तनिर्व्वाणदीक्षः।। ९९।।

(हरिगीत)

मदनगज को वज्रधर पर मदन सम सौन्दर्य है।
मुनिगण नमें नित चरण में यमराज नाशक शौर्य है।।
पापवन को अनल जिनकी कीर्ति दशदिश व्याप्त है।
जगतपति जिन पद्मप्रभ नित जगत में जयवंत हैं।। १०० ।।

ॐ ह्रीं श्रीजगदधीशजिनेन्द्राय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८३।।

अब सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

नष्ट कीने अष्ट विध विधि स्वयं में एकाग्र हो।
अष्ट गुण से सहित सिध थित हुए हैं लोकाग्र में।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठीस्वरूपप्ररूपक नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८४।।

अब टीकाकार सिद्ध परमेष्ठी की स्तुति करते हुये तीन छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

निश्चय से निज में रहें नित्य सिद्ध भगवान।
तीन लोक चूडामणी यह व्यवहार बखान।। १०१ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारनयेनसिद्धस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८५।।

(मालिनी)

मदननगसुरेशः कान्तकायप्रदेशः
पदविनतयमीशः प्रास्तकीनाशपाशः।
दुरघवनहुताशः कीर्तिसंपूरिताशः
जयति जगदधीशः चारुपद्मप्रभेशः।। १००।।

(गाथा)

णट्ठणट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति।। ७२।।

(मालिनी)

व्यवहरणनयेन ज्ञानपुंजः स सिद्धः
त्रिभुवनशिखराग्रग्रावचूडामणिः स्यात्।
सहजपरमचिच्चिन्तामणौ नित्यशुद्धे
निवसति निजरूपे निश्चयेनैव देवः।। १०१।।

(वीर)

देहमुक्त लोकाग्र शिखर पर रहे नित्य अन्तर्यामी।
अष्ट कर्म तो नष्ट किये पर मुक्ति सुन्दरी के स्वामी।।
सर्व दोष से मुक्त हुए पर सर्वसिद्धि के हैं दातार।
सर्वसिद्धि की प्राप्ति हेतु मैं करूँ वन्दना बारंबार।। १०२ ।।

ॐ ह्रीं देहातीतसिद्धस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८६।।

(दोहा)

जो स्वरूप में थिर रहे शुद्ध अष्ट गुणवान।
नष्ट किये विधि अष्ट जिन नमों सिद्ध भगवान।। १०३ ।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसहितसिद्धस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८७।।

अब आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

पंचेन्द्रिय गजमदगलन हरि मुनि धीर गुण गंभीर अर।
परिपूर्ण पंचाचार से आचार्य होते हैं सदा।। ७३ ।।

ॐ ह्रीं आचार्यपरमेष्ठीस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८८।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(स्रग्धरा)

नीत्वास्तान् सर्वदोषान् त्रिभुवनशिखरे ये स्थिता देहमुक्ता:
तान् सर्वान् सिद्धिसिद्ध्यै निरुपमविशदज्ञानदृक्शक्तियुक्तान्।
सिद्धान नष्टानष्टकर्मप्रकृतिसमुदयान् नित्यशुद्धाननन्तान्
अव्याबाधान्नमामि त्रिभुवनतिलकान् सिद्धिसीमन्तिनीशान्।। १०२।।

(अनुष्टुभ्)

स्वस्वरूपस्थितान् शुद्धान् प्राप्ताष्टगुणसंपदः।
नष्टानष्टकर्मसंदोहान् सिद्धान वंदे पुनः पुनः।। १०३।।

(गाथा)

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति॥ ७३॥

(हरिगीत)

अकिंचनता के धनी परवीण पंचाचार में।
अर जितकषायी निपुणबुद्धि हैं समाधि योग में।।
ज्ञानबल से बताते जो पंच अस्तिकाय हम।
उन्हें पूजें भवदुखों से मुक्त होने के लिए।। ३५ ।।[१]

ॐ ह्रीं पंचाचारपरायण-आचार्यपरमेष्ठीस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८९।।

अब टीकाकार श्रीचन्द्रकीर्ति मुनिराज को वन्दना करते हैं –

(हरिगीत)

सब इन्द्रियों के सहारे से रहित आकुलता रहित।
स्वहित में नित हैं निरत मैत्री दया दम के धनी।।
मुक्ति के जो हेतु शम, दम, नियम के आवास जो।
उन चन्द्रकीर्ति महामुनि का हृदय वंदन योग्य है।। १०४ ।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रकीर्तिमुनिराजाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९०।।

अब उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप बताते हैं –

(शार्दूलविक्रीडित)

पंचाचारपरान्नकिंचनपतीन्नष्टकषायाश्रमान्
चंचज्ज्ञानबलप्रपंचितमहापंचास्तिकायस्थितीन्।
स्फाराचंचलयोगचंचुरधियः सूरीनुदंचद्गुणान्
अंचामो भवदुःखसंचयभिदे भक्तिक्रियाचंचवः।। ३५।।[१]

(हरिणी)

सकलकरणग्रामालंबाद्विमुक्तमनाकुलं
स्वहितनिरतं शुद्धं निर्वाणकारणकारणम्।
शमदमयमावासं मैत्रीदयादमंदिरं
निरुपमिदं वंद्यं श्रीचन्द्रकीर्तिमुनेर्मनः।। १०४।।

---

१. आचार्य वादिराज, ग्रन्थनाम एवं श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

(हरिगीत)

रतन त्रय संयुक्त अर आकांक्षाओं से रहित।
तत्त्वार्थ के उपदेश में जो शूर वे पाठक मुनी।। ७४ ।।

ॐ ह्रीं उपाध्यायपरमेष्ठीप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८९।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(दोहा)

वंदे बारम्बार हम भव्यकमल के सूर्य।
उपदेशक तत्त्वार्थ के उपाध्याय वैडूर्य।। १०५ ।।

ॐ ह्रीं तत्त्वार्थोपदेशक उपाध्यायपरमेष्ठीनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९०।।

अब साधु परमेष्ठी का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

आराधना अनुरक्त नित व्यापार से भी मुक्त हैं।
निजमार्ग में सब साधुजन निर्मोह हैं निर्ग्रन्थ हैं।। ७५ ।।

ॐ ह्रीं साधुपरमेष्ठीस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९०।।

अब टीकाकार साधु परमेष्ठी की वंदना करते हैं –

(दोहा)

भव सुख से जो विमुख हैं सर्व संग से मुक्त।
उनका मन अभिवंद्य है जो निज में अनुरक्त।। १०६ ।।

ॐ ह्रीं परिग्रहरहितसाधुनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९१।।

(गाथा)

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति।। ७४।।

(अनुष्टुभ्)

रत्नत्रयमयान् शुद्धान् भव्यांभोजदिवाकरान्।
उपदेष्टृनुपाध्यायान् नित्यं वंदे पुनः पुनः।। १०५।।

(गाथा)

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराणसयारत्ता।
णिग्गंथा णिम्मोहा साहू दे एरिसा होंति।। ७५।।

(आर्या)

भविनां भवसुखविमुखं त्यक्तं सर्वाभिषंगसंबंधात्।
मंक्षु विमंक्ष्व निजात्मनि वंद्यं नस्तन्मनः साधोः।। १०६।।

अब व्यवहारचारित्र का समापन करते हुये आगे निश्चयचारित्र का निरूपण करेंगे ऐसा बताते हैं – (हरिगीत)

इसतरह की भावना व्यवहार से चारित्र है।
अब कहूँगा मैं अरे निश्चयनयाश्रित चरण को।। ७६ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारचारित्राधिकारोपसंहारक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९२।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

कोठार के भीतर पड़े ज्यों बीज उग सकते नहीं।
बस उसतरह चारित्र बिन दृग-ज्ञान फल सकते नहीं।।
असुर मानव देव भी थुति करें जिस चारित्र की।
मैं करूँ वंदन नित्य बारंबार उस चारित्र को।। ३६ ।।

ॐ ह्रीं चारित्रमहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. मस्वाहा।।१९३।।

अब मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(अडिल्ल)

आत्मरमणतारूप चरण ही शील है।
निश्चय का यह कथन शील शिवमूल है।।
शुभाचरण मय चरण परम्परा हेतु है।
सूरिवचन यह सदा धर्म का मूल है।। १०७ ।।

ॐ ह्रीं निश्चय-व्यवहारशीलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९१।।

(गाथा)

एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं।
णिच्छयणयस्स चरणं एत्तो उड्ढं पवक्खामि।। ७६ ।।

कुसूलगर्भस्थितबीजसोदरं भवेद्विना येन सुदृष्टिबोधनम्।
तदेव देवासुरमानवस्तुतं नमामि जैनं चरणं पुनः पुनः।। ३६ ।।[1]

(आर्या)

शीलमपवर्गयोषिदनंगसुखस्यापि मूलमाचार्याः।
प्राहुर्व्यवहारात्मकवृत्तमपि तस्य परंपरा हेतुः।। १०७ ।।

---

१. मार्गप्रकाश, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।

जयमाला

(दोहा)

शुद्धभावमय जीव है अलख निरंजन एक।
एकमात्र आदेय वह और सभी हैं हेय।। १ ।।
पंच महाव्रत समिति अर तीन गुप्ति आदेय।
परमेष्ठी की भक्ति ये हैं सब व्यवहारेय।। २ ।।

(रेखता)

अरे यह शुद्धभाव अधिकार बताया इसमें आत्मस्वभाव।
अरे यह गुणभेदों से भिन्न नहीं है इसमें कोई विभाव।।
नहीं है इसमें उपशमभाव नहीं हैं उदय क्षयोपशमभाव।
अधिक क्या कहें सुनो भविजीव नहीं है इसमें क्षायिकभाव।। ३ ।।

अरे यह गुणभेदों से भिन्न और यह पर्यायों से पार।
त्रिकाली ध्रुव परमातम तत्त्व भव्य लेवें इसका आधार।।
यही निर्ग्रन्थ और नीराग यही निशल्य और निर्दोष।
यही निर्देह और निर्मूढ़ यही निष्काम और निष्क्रोध।। ४।।

यही निर्दण्ड और निर्द्वन्द यही है अरस अरूप अगंध।
अरे चिद्भावों से भरपूर ज्ञान-दर्शन से है परिपूर्ण।।
आतमा का यह शुद्धस्वभाव न इसमें कहीं कोई परभाव।
यही है शुद्धभाव अधिकार यही है शुद्धभाव का भाव।। ५।।

अभी तक शुद्धभाव अधिकार कही थी निश्चयनय की बात।
किन्तु अब कहते हैं व्यवहारनयाश्रित यतियों का आचार।।
जगत में हैं त्रस-स्थावर जीव अनन्ते जिनका कोई न पार।
उन्हीं का न होवे संहार अहिंसाव्रत का यह आधार।। ६।।

नहीं होते सन्तों को मोह और रे राग-द्वेष के भाव।
इसलिये उनको कभी न होंय असत भाषण के कोई भाव।।
पराई वस्तु देखकर उन्हें नहीं होते लेने के भाव।
देखकर के रमणी का रूप नहीं होते मन में दुर्भाव।। ७।।

परीग्रह रंच नहीं होता अरे मुनिवर भगवन्तों के।
पंच-पापों का पूरण त्याग सदा ही होता सन्तों के।।
जमी को चार हाथ आगे देखकर सदा सन्त चलते।
सदा ही हित-मित-प्रिय बोलें सहज ही उच्चारण करते।। ८।।

अहिंसा व्रत का रखते ध्यान निरन्तर भोजन करने में।
और वे रहें नित्य सावधान कमण्डल पीछी रखने में।।
सावधानी रखते हैं पूर्ण भूमि के शोधन करने में।
विसर्जन करते हैं मल-मूत्र समिति के पालन करने में।। ९।।

अरे मन हो आतम में लीन मौन से रहें काय उत्सर्ग।
यही हैं तीन गुप्ति मुनिराज जिनमें रहते हैं नित गुप्त।।
पंचपरमेष्ठी की भक्ती निरन्तर करते रहते हैं।
उन्हीं के अन्तर्तम की जाप निरन्तर जपते रहते हैं।। १०।।

उन्हीं के पदचिन्हों पर नित्य निरन्तर चलते रहते हैं।
तथा सिद्धों सन्तों की याद निरन्तर करते रहते हैं।।
पंचपरमेष्ठी की हो भक्ति आतमा का होवे नित ध्यान।
यही है सन्तों का आचरण यही है सन्तों का व्यवहार।। ११।।

ॐ ह्रीं श्री व्यवहारचारित्राधिकाराभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

शुद्धभाव अधिकार अर व्यवहार चरित अधिकार।
की पूजन पूरण हुई है आनन्द अपार।। १२।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

४

परमार्थप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान एवं परमालोचना अधिकार पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

मोहवश इस जीव ने अब तक किये जो घोर अघ।
उन सभी का कर प्रतिक्रमण अब हो रहा हूँ मैं अनघ।। १ ।।

परभाव को पर जानकर जब उन सभी को छोड़ दे।
कहे प्रत्याख्यान तब जब सब विकल्प मरोड़ दें।। २ ।।

पुन–पाप के जो भाव अब तक किये हैं अर कर रहा।
उन सभी की हृदय से आलोचना अब कर रहा।। ३ ।।

(रोला)

भूतकाल में किये गये दोषों का मार्जन।
कहलाता है प्रतिक्रमण अर भाविकाल में।।
करें नहीं – यह प्रत्यख्यान अर वर्तमान के।
दोषों का परिमार्जन करना आलोचन है।। ४।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण–निश्चयप्रत्याख्यान–परमालोचनाधिकाराः अत्र अवतरत-अवतरत संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण–निश्चयप्रत्याख्यान–परमालोचनाधिकाराः अत्र तिष्ठत-तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण–निश्चयप्रत्याख्यान–परमालोचनाधिकाराः अत्र मम सन्निहिता भवत-भवत वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रोला)

जल

निर्मल जल ज्यों मलिन वस्तु का मल हर लेता।
आतम का अभ्यास उसे[१] निर्मल कर देता।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। १।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

इस भव का आताप शान्त कर देता चन्दन।
भव-भव का संताप मिटावे उसका[२] वंदन।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। २।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अक्षत सा अक्षत अखण्ड यह आतम जानों।
स्वयं स्वयं में स्वयं पूर्ण परमातम मानों।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ३।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

अरे सुगन्धित पुष्प गंध से रहित आतमा।
परमानन्दी ज्ञानस्वभावी शान्त आतमा।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ४।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. आतमा को २. भगवान आत्मा का

नेवैद्य

सभी सरस पकवान जगत की भूख बढ़ावें।
आतम रस का पान शान्ति समता उपजावे।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ५।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

रत्नदीप की ज्योति न ज्यों डग-मग होती है।
आत्मदीप की ज्योति सदा जग-मग होती है।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ६।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

अरे दशांगी धूप बनी है दश द्रव्यों से।
पर यह आतमराम सुशोभित दशधर्मों से।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ७।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

जग के फल सब अफल सफलता से खाली हैं।
जो आतम में रमे जीव तो वही सफल है।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ८।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

बेशकीमती अर्घ नहीं देवे अनर्घ पद।
जो अपने में जमे-रमे पावे अनर्घ पद।।
तीन काल के दोषों का परिमार्जन करना।
इन तीनों अधिकारों का यह मर्म समझना।। ४।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

अर्घ्यावली

।। परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार ।।

इस अधिकार की टीका आरम्भ करने से पूर्व मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव मंगलाचरण के रूप में आचार्य माधवसेन को नमस्कार करते हैं –

(हरिगीत)

कामगज के कुंभथल का किया मर्दन जिन्होंने।
विकसित करें जो शिष्यगण के हृदयपंकज नित्य ही।।
परम संयम और सम्यक्बोध की हैं मूर्ति जो।
हो नमन बारम्बार ऐसे सूरि माधवसेन को।। १०८।।

ॐ ह्रीं श्री माधवसेनसूरिभ्योः नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९२।।

अब सबसे पहले पंचरत्नों का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

मैं नहीं नारक देव मानव और तिर्यग मैं नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्तानुमंता भी नहीं।। ७७ ।।

(वंशस्थ)
नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै।
विनेयपंकेजविकाशमानवे विराजते माधवसेनसूरये।। १०८।।

(गाथा)
णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।। ७७ ।।

मार्गणास्थान जीवस्थान गुणथानक नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्तानुमंता भी नहीं।। ७८।।
बालक तरुण बूढा नहीं इन सभी का कारण नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्तानुमंता भी नहीं।। ७९।।
मैं मोह राग द्वेष न इन सभी का कारण नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्तानुमंता भी नहीं।। ८०।।
मैं मान माया लोभ एवं क्रोध भी मैं हूँ नहीं।
कर्ता कराता और मैं कर्तानुमंता भी नहीं।। ८१।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचरत्नस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९३।।

अब टीकाकार एक छन्द लिखते हैं, जिसमें प्रतिक्रमण और सन्यास का फल बताया गया है –

(हरिगीत)

सम्पूर्ण विषयों के ग्रहण की भावना से मुक्त हों।
निज द्रव्य गुण पर्याय में जो हो गये अनुरक्त हों।।
छोड़कर सब विभावों को नित्य निज में ही रमें।
अति शीघ्र ही वे भव्य मुक्तीरमा की प्राप्ति करें।। १०९ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणसन्यासफलनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९४।।

णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।। ७८।।
णाहं बालो बुड्ढो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।। ७९।।
णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।। ८०।
णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।। ८१।।

(वसंततिलका)

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पंचरत्नात्।। १०९।।

अब प्रतिक्रमणादि की चर्चा करने का संकल्प लेते हैं –

(हरिगीत)

इस भेद के अभ्यास से मध्यस्थ हो चारित्र हो।
चारित्र दृढता के लिए प्रतिक्रमण की चर्चा करूँ।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणादिचर्चा-प्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९४।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(रोला)

अबतक जो भी हुए सिद्ध या आगे होंगे।
महिमा जानो एकमात्र सब भेदज्ञान की।।
और जीव जो भटक रहे हैं भवसागर में।
भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे हैं।। ३७ ।।

ॐ ह्रीं भेदविज्ञानमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९५।।

अब टीकाकार भगवान आत्मा का अद्भुत माहात्म्य दिखाते हैं –

(रोला)

इसप्रकार की थिति में मुनिवर भेदज्ञान से।
पापपंक को धोकर समतारूपी जल से।।
ज्ञानरूप होने से आतम मोहमुक्त हो।
शोभित होता समयसार की कैसी महिमा।। ११० ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः अद्भुतमाहात्म्यनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९६।।

(गाथा)

एरिसभेदब्भासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।
तं दिढकरणणिमित्तं पडिक्कमणादी पवक्खामि।। ८२।।

(अनुष्टुभ्)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।। ३७।।[१]

(मालिनी)

इति सति मुनिनाथस्योवकैर्भेदभावे
स्वयमयमुपयोगाद्राजते मुक्तमोहः।
शमजलनिधिपूरक्षालितांहः कलंकः
स खलु समयसारस्यास्य भेदः क एषः।। ११०।।

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-१३१

अब निश्चय प्रतिक्रमण का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

वचन रचना छोड़कर रागादि का कर परिहरण।
ध्याते सदा जो आतमा होता उन्हीं को प्रतिक्रमण।। ८३ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९७।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

क्या लाभ है ऐसे अनल्प विकल्पों के जाल से।
बस एक ही है बात यह परमार्थ का अनुभव करो।।
क्योंकि निजरसभरित परमानन्द के आधार से।
कुछ भी नहीं है अधिक सुन लो इस समय के सार से।। ३८ ।।

ॐ ह्रीं समयसारमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९८।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(दोहा)

तीव्र मोहवश जीव जो किये अशुभतम कृत्य।
उनका कर प्रतिक्रमण मैं रहुँ आतम में नित्य।। १११ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणभावनानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९९।।

(गाथा)

मोत्तूण वयणरयणं रागादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं।। ८३।।

(मालिनी)

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै–
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा–
न्न खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति।। ३८।।[१]

(आर्या)

अतितीव्रमोहसंभवपूर्वार्जितं तत्प्रतिक्रम्य।
आत्मनि सद्बोधात्मनि नित्यं वर्तेऽहमात्मना तस्मिन्।। १११।।

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द–२४४

अब आत्मा का आराधना ही प्रतिक्रमण हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

विराधना को छोड़ जो आराधना में नित रहे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए वह स्वयं ही प्रतिक्रमण है।। ८४ ।।

ॐ ह्रीं आत्माराधना एव प्रतिक्रमणनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।२००।।

अब टीकाकार एक गाथा और एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

साधित अराधित राध अर संसिद्धि सिद्धि एक है।
बस राध से जो रहित है वह आतमा अपराध है।। ३९ ।।

ॐ ह्रीं अध्यात्मदृष्ट्या अपराधस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।२०१।।

(हरिगीत)

जो सापराधी निरन्तर वे कर्मबंधन कर रहे।
जो निरपराधी वे कभी भी कर्मबंधन ना करें।।
अशुद्ध जाने आतमा को सापराधी जन सदा।
शुद्धात्मसेवी निरपराधी शान्ति सेवें सर्वदा।। ४० ।।

ॐ ह्रीं अपराध-निरपराधफलनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०२।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(गाथा)

आराहणाइ वट्टइ मोत्तूण विराहणं विसेसेण।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।। ८४।।
संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं।
अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो।। ३९ ।।[1]

(मालिनी)

अनवरतमनंतैर्बध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बंधनं नैव जातु।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी।। ४०।।[2]

---

१. समयसार, गाथा ३०४ २. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-१८७

(हरिगीत)

परमात्मा के ध्यान की संभावना से रहित जो।
संसार पीड़ित अज्ञजन वे सापराधी जीव हैं।।
अखण्ड अर अद्वैत चेतनभाव से संयुक्त जो।
निपुण हैं संन्यास में वे निरपराधी जीव हैं।। ११२ ।।

ॐ ह्रीं अपराधी-निरपराधीस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०३।।

अब निश्चयचारित्र के धारक संतों को ही निश्चय प्रतिक्रमण होता है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो जीव छोड़ अनाचरण आचार में थिरता धरे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।। ८५ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयचारित्रवंतप्रतिक्रमणमयनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२०४।।

अब टीकाकार स्वयं दो छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

रे स्वयं से उत्पन्न परमानन्द के पीयूष से।
रे भरा है जो लबालब ज्ञायकस्वभावी आतमा ।।
उसे शम जल से नहाओ प्रशम भक्तिपूर्वक।
सोचो जरा क्या लाभ है इस व्यर्थ के आलाप से।। ११३ ।।

ॐ ह्रीं परमार्थप्रतिक्रमणप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०५।।

अपगतपरमात्मध्यानसंभावनात्मा
नियतमिह भवार्तः सापराधः स्मृतः सः।
अनवरतमखंडाद्वैतचिद्भावयुक्तो
भवति निरपराधः कर्मसंन्यासदक्षः।। ११२।।

(गाथा)

मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।। ८५।।

(मालिनी)

अथ निजपरमानन्दैकपीयूषसान्द्रं
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा।
निजशममयवार्भिर्निर्भरानंदभक्त्या
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः।। ११३।।

(रोला)

जन्म-मरण के जनक सर्व दोषों को तजकर।
अनुपम सहजानन्दज्ञानदर्शनवीरजमय ।।
आतम में थित होकर समताजल समूह से।
कर कलिमलक्षय जीव जगत के साक्षी होते ।। ११४ ।।

ॐ ह्रीं परमार्थप्रतिक्रमणफलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०६।।

अब जो उन्मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग में स्थिर होता है वह स्वयं प्रतिक्रमण-स्वरूप ही है, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

छोड़कर उन्मार्ग जो जिनमार्ग में थिरता धरे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए प्रतिक्रमण कहते हैं उसे।। ८६ ।।

ॐ ह्रीं जिन्मार्गस्थितजीवप्रतिक्रमणमयनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०७।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं -

(मनहरण कवित्त)

उतसर्ग और अपवाद के विभेद द्वारा।
भिन्न-भिन्न भूमिका में व्याप्त जो चरित्र है।।
पुराणपुरुषों के द्वारा सादर है सेवित जो।
उसे प्राप्त कर संत हुए जो पवित्र हैं।।
चित्सामान्य और चैतन्यविशेष रूप।
जिसका प्रकाश ऐसे निज आत्मद्रव्य में।।

(स्रग्धरा)

मुक्त्वानाचारमुच्चैर्जननमृतकरं सर्वदोषप्रसंगं
स्थित्वात्मन्यात्मनात्मा निरुपमसहजानंददृग्ज्ञप्तिशक्तौ।
बाह्याचारप्रमुक्तः शमजलनिधिवार्बिन्दुसंदोहपूतः
सोऽयं पुण्यः पुराणः क्षपितमलकलिर्भाति लोकोद्घसाक्षी।। ११४।।

(गाथा)

उम्मग्गं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।। ८६ ।।

क्रमशः पर से पूर्णतः निवृत्ति करके।
सभी ओर से सदा वास करो निज में।। ४१ ।।

ॐ ह्रीं उत्सर्ग-अपवादरूपचारित्रेण निजात्मद्रव्यस्थिरताप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०८।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

जो मुक्त सब संकल्प शुध निजतत्त्व में अनुरक्त हों।
तप मग्न जिनका चित्त नित स्वाध्याय में जो मत्त हों।।
धन्य हैं जो सन्त गुणमणि युक्त विषय विरक्त हों।
वे मुक्तिरूपी सुन्दरी के परम वल्लभ क्यों न हों।। ११५ ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गस्थितमुनिराजप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०९।।

अब मुनिराज माया, मिथ्यात्व और निदान रूप शल्यों से रहित हैं, यह बताते हैं – (हरिगीत)

छोड़कर त्रिशल्य जो निःशल्य होकर परिणमे।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए वह स्वयं ही प्रतिक्रमण है।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं त्रिशल्यरहित मुनिराजनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१०।।

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गादपवादतश्च विचरद्वह्वीः पृथग्क्रमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्तिमतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्।। ४१।।[१]

(मालिनी)

विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः
तपसि निरतविरताः शास्त्रसंघातमत्ताः।
गुणमणिगणयुक्ताः सर्वसंकल्पयुक्ताः
कथमृतवधूटीवल्लभा न स्युरेते ।। ११५ ।।

(गाथा)

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।। ८७।।

---

१. प्रवचनसार : तत्त्वप्रदीपिका, छन्द-१५

अब टीकाकार शुद्धात्मा को भाने की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

शल्य रहित परमात्म में तीन शल्य को छोड़।
स्थित रह शुद्धात्म को भावैं पंडित लोग।। ११६ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२११।।

अब टीकाकार स्वभावजन्य सुख को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं –

(कुण्डलिया)

अरे कषायों से रंगा भव का हेतु अजोड़।
कामबाण की आग से दग्ध चित्त को छोड़।।
दग्ध चित्त को छोड़ भाग्यवश जो न प्राप्त है।
ऐसा सुख जो निज आतम में सदा व्याप्त है।।
निजस्वभाव में नियत आत्मरस माँहि पगा है।
उसे भजो जो नाँहि कषायों माँहि रंगा है।। ११७ ।।

ॐ ह्रीं स्वभावजन्यसुखप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१२।।

अब त्रिगुप्तिधारी साधु ही प्रतिक्रमण हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

तज अगुप्तिभाव जो नित गुप्त गुप्ती में रहें।
प्रतिक्रमणमय है इसलिए प्रतिक्रमण कहते हैं उन्हें।। ८८ ।।

ॐ ह्रीं त्रिगुप्तिधारीसाधुप्रतिक्रमणमयनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१३।।

(अनुष्टुभ्)

शल्यत्रयं परित्यज्य निःशल्ये परमात्मनि।
स्थित्वा विद्वान्सदा शुद्धमात्मानं भावयेत्स्फुटम्।। ११६।।

(पृथ्वी)

कषायकलिरंजितं त्यजतु चित्तमुच्चैर्भवान्
भवभ्रमणकारणं स्मरशराग्निदग्धं मुहुः।
स्वभावनियतं सुखं विधिवशादनासादितं
भज त्वमलिनं यते प्रबलसंसृतेर्भीतितः।। ११७।।

(गाथा)

चत्ता अगुत्तिभावं तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।। ८८।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

सद्ज्ञानमय शुद्धात्मा पर है न कोई आवरण।
त्रिगुप्तिधारी मुनिवरों का परम निर्मल आचरण।।
मन–वचन–तन की विकृति को छोड़कर हे भव्यजन!
शुद्धात्मा की भावना से परम गुप्ती को भजो।। ११८।।

ॐ ह्रीं त्रिगुप्तिप्राप्तिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१४।।

अब धर्मध्यान और शुक्लध्यान ही प्रतिक्रमण है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

तज आर्त एवं रौद्र ध्यावे धरम एवं शुकल को।
परमार्थ से वह प्रतिक्रमण यह कहा जिनवर सूत्र में।। ८९ ।।

ॐ ह्रीं धर्म–शुक्लध्यानैव प्रतिक्रमणप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१५।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्घृत करते हैं –

(रोला)

अरे इन्द्रियों से अतीत अन्तर्मुख निष्क्रिय।
ध्यान–ध्येय के जल्पजाल से पार ध्यान जो।।
अरे विकल्पातीत आतमा की अनुभूति।
ही है शुक्लध्यान योगिजन ऐसा कहते।। ४२।।

ॐ ह्रीं शुक्लध्याननिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१६।।

(हरिणी)

अथ तनुमनोवाचां त्यक्त्वा सदा विकृतिं मुनिः
सहजपरमां गुप्तिं संज्ञानपुंजमयीमिमाम्।
भजतु परमां भव्यः शुद्धात्मभावनया समं
भवति विशदं शीलं तस्य त्रिगुप्तिमयस्य ततऊ।। ११८।।

(गाथा)

मोत्तूण अट्टरुद्दं झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा।
सो पडिकमणं उच्चइ जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु।। ८९।।

(अनुष्टुभ्)

निष्क्रियं करणातीतं ध्यानध्येयविवर्जितम्।
अन्तर्मुखं तु यद्ध्यानं तच्छुक्लं योगिनो विदुः।। ४२।।[1]

---

१. ग्रन्थ का नाम और श्लोक संख्या अनुपलब्ध है

अब टीकाकार स्वयं दो छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(रोला)

सदा प्रगट कल्याणरूप परमात्मतत्त्व में।
ध्यानावलि है कभी कहे न परमशुद्धनय।।
ऐसा तो व्यवहारमार्ग में ही कहते हैं।
हे जिनवर यह तो सब अद्भुत इन्द्रजाल है।। ११९ ।।

ज्ञानतत्त्व का आभूषण परमात्मतत्त्व यह।
अरे विकल्पों के समूह से सदा मुक्त है।।
नय समूहगत यह प्रपंच न आत्मतत्त्व में।
तब ध्यानावलि कैसे आई कहो जिनेश्वर।। १२०।।

ॐ ह्रीं निर्विकल्पात्मस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१७।।

अब सम्यक्त्वादि भाव आज तक नहीं भाये, यह बतलाते हैं –

(हरिगीत)

मिथ्यात्व आदिक भाव तो भाये सुचिर इस जीव ने।
सम्यक्त्व आदिक भाव पर भाये नहीं इस जीव ने।। ९० ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वादिभाव दुर्लभत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।२१८।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(वसंततिलका)

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति
व्यक्तं सदाशिवमये परमात्मतत्त्वे।
सास्तीत्युवाच सततं व्यवहारमार्ग–
स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम्।। ११९।।
सद्बोधमंडनमिदं परमात्मतत्त्वं
मुक्तं विकल्पनिकरैरखिलैः समन्तात्।
नास्त्येष सर्वनयजातगतप्रपंचो
ध्यानावली कथय सा कथमत्र जाता।। १२०।।

(गाथा)

मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं।
सम्मत्तपहुदिभावा अभाविया होंति जीवेण।। ९०।।

(दोहा)

पहले कभी न भायी जो भवावर्त्त के माँहि।
भवाभाव के लिए अब मैं भाता हूँ ताहि।। ४३ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्वादिभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१९।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(हरिगीत)

संसार सागर में मगन इस आत्मघाती जीव ने।
रे मात्र कहने के धर्म की वार्ता भव-भव सुनी।।
धारण किया पर खेद है कि अरे रे इस जीव ने।
ज्ञायकस्वभावी आत्मा की बात भी न कभी सुनी।। १२१ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मतत्त्वस्य दुर्लभत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२०।।

अब रत्नत्रयरूप से परिणमित ज्ञानी जीव स्वयं ही प्रतिक्रमण हैं, यह बताते हैं–

(हरिगीत)

ज्ञानदर्शनचरण मिथ्या पूर्णतः परित्याग कर।
रतनत्रय भावे सदा वह स्वयं ही है प्रतिक्रमण।। ९१ ।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयरूपपरिणतजीवैव प्रतिक्रमणमयनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२१।।

(अनुष्टुभ्)

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः।। ४३ ।।[1]

(मालिनी)

अथ भवजलराशौ मग्नजीवेन पूर्वं
किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत्।
तदपि भवभवेषु श्रूयते बाह्यते वा
न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम्।। १२१ ।।

(गाथा)

मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण।
सम्मत्तणाणचरणं जो भावइ सो पडिक्कमणं।। ९१ ।।

---

१. आत्मानुशासन, छन्द-२३८

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं–

(दोहा)

जानकार निजतत्त्व के तज विभाव व्यवहार।
आत्मज्ञान श्रद्धानमय धरें विमल आचार।। १२२ ।।

ॐ ह्रीं निजतत्त्ववेदीरत्नत्रयमयप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२२।।

अब आत्मध्यान ही प्रतिक्रमण है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

उत्तम पदारथ आतमा में लीन मुनिवर कर्म को।
घातते हैं इसलिए निज ध्यान ही है प्रतिक्रमण।। ९२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यानैवप्रतिक्रमणनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२३।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

प्रतिक्रमण अर प्रतिसरण परिहार निवृत्ति धारणा।
निन्दा गरहा और शुद्धि अष्टविध विषकुंभ हैं।। ४४ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणादीन् विषकुम्भप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२२४।।

(रोला)

प्रतिक्रमण भी अरे जहाँ विष–जहर कहा हो।
अमृत कैसे कहें वहाँ अप्रतिक्रमण को।।

(वसंततिलका)

त्यक्त्वा विभावमखिलं व्यवहारमार्ग–
रत्नत्रयं च मतिमान्निजतत्त्ववेदी।
शुद्धात्मतत्त्वनियतं निजबोधमेकं।
श्रद्धानमन्यदपरं चरणं प्रपेदे।। १२२।।

(गाथा)

उत्तमअट्ठं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं।। ९२।।
पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो।। ४४ ।।[1]

१. समयसार, गाथा ३०६

अरे प्रमादी लोग अधोऽध: क्यों जाते हैं ?
इस प्रमाद को त्याग ऊर्ध्व में क्यों नहीं जाते ?।। ४५ ।।

ॐ ह्रीं निष्प्रमादप्रवृत्तिप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२५।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

रे ध्यान–ध्येय विकल्प भी सब कल्पना में रम्य हैं।
इक आतमा के ध्यान बिन सब भाव भव के मूल हैं।।
यह जानकर शुध सहज परमानन्द अमृत बाढ में।
डुबकी लगाकर सन्तजन हों मगन परमानन्द में।। १२३ ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यानातिरिक्त–अन्यक्रियाकाण्डनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२६।।

अब एकमात्र ध्यान ही उपादेय हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

निजध्यान में लवलीन साधु सर्व दोषों को तजे।
बस इसलिए यह ध्यान ही सर्वातिचारी प्रतिक्रमण।। ९३ ।।

ॐ ह्रीं ध्यानस्य उपादेयत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२६।।

(वसंततिलका)

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुत: स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जन: प्रपतन्नधोऽध:
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमाद:।। ४५ ।।[१]

(मंदाक्रांता)

आत्मध्यानादपरमखिलं घोरसंसारमूलं
ध्यानध्येयप्रमुखसुतप: कल्पनामात्ररम्यम्।
बुद्ध्वा धीमान् सहजपरमानन्दपीयूषपूरे
निर्मज्जन्तं सहजपरमात्मानमेकं प्रपेदे।। १२३ ।।

(गाथा)

झाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं।। ९३ ।।

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द–१८९

अब मुनिराज शुक्लध्यान की महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

चित्तमंदिर में सदा दीपक जले शुक्लध्यान का।
उस योगि को शुद्धातमा प्रत्यक्ष होता है सदा।। १२४ ।।

ॐ ह्रीं शुक्लध्यानमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२७।।

अब व्यवहार प्रतिक्रमण की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

प्रतिक्रमण नामक सूत्र में वर्णन किया जिसरूप में।
प्रतिक्रमण होता उसे जो भावे उसे उस रूप में।। ९४ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारप्रतिक्रमणनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२२८।।

अब टीकाकार स्वयं दो छन्द लिखते हैं –

(दोहा)

निर्यापक आचार्य के सुनकर वचन सयुक्ति।
जिनका चित्त चारित्र घर वन्दूँ उनको नित्य।। १२५ ।।

ॐ ह्रीं श्री संयमस्थित मुनिराजाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२९।।

(अनुष्टुभ्)

शुक्लध्यानप्रदीपोऽयं यस्य चित्तालये बभौ।
स योगी तस्य शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति स्वयम्।। १२४।।

(गाथा)

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं।
तह णच्चा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिक्कमणं।। ९४।।

(इन्द्रवज्रा)

निर्यापकाचार्यनिरुक्तियुक्ता–मुक्तिं सदाकर्ण्य च यस्य चित्तम्।
समस्तचारित्रनिकेतनं स्यात् तस्मै नमः संयमधारिणेऽस्मै।। १२५।।

(वसन्ततिलका)

अरे जिन्हें प्रतिक्रमण ही नित्य वर्ते।
अणुमात्र अप्रतिक्रमण जिनके नहीं है।।
जो सकल संयम भूषण नित्य धारें।
उन वीरनन्दि मुनि को नित ही नमें हम।। १२६ ।।

ॐ ह्रीं श्री संयमस्थित मुनिराजाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३०।।

।। निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार ।।

इस अधिकार में सर्वप्रथम ही प्रत्याख्यान का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

सब तरह के जल्प तज भावी शुभाशुभ भाव को।
जो निवारण कर आत्म ध्यावे उसे प्रत्याख्यान है।। ९५ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२३१।।

अब टीकाकार एक गाथा और एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

परभाव को पर जानकर परित्याग उनका जब करे।
तब त्याग हो बस इसलिए ही ज्ञान प्रत्याख्यान है।। ४६ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रत्याख्यानप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२३२।।

(वसंततिलका)

यस्य प्रतिक्रमणमेव सदा मुमुक्षो–र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः।
तस्मै नमः सकलसंयमभूषणाय श्रीवीरनन्दिमुनिनामधराय नित्यम्।। १२६।।

(गाथा)

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स।। ९५ ।।
सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं।। ४६ ।।[१]

१. समयसार, गाथा ३४

(रोला)

नष्ट हो गया मोहभाव जिसका ऐसा मैं।
करके प्रत्याख्यान भाविकर्मों का अब तो।।
वर्त रहा हूँ अरे निरन्तर स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।। ४७ ।।

ॐ ह्रीं सकलकर्मसन्यासहेतु-शुद्धबुद्धचैतन्यात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३३।।

अब टीकाकार स्वयं भी एक छन्दरूप काव्य लिखते हैं –

(हरिगीत)

जो ज्ञानि छोड़े कर्म अर नोकर्म के समुदाय को।
उस ज्ञानमूर्ति विज्ञजन को सदा प्रत्याख्यान है।।
और सत् चारित्र भी है क्योंकि नाशे पाप सब।
वन्दन करूँ नित भवदुखों से मुक्त होने के लिए।। १२७ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानमयज्ञानीप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२३४।।

अब ज्ञानी निरन्तर क्या विचारते हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञानी विचारें इसतरह यह चिन्तवन उनका सदा।
केवल्यदर्शन-ज्ञान-सुख-शक्तिस्वभावी हूँ सदा।। ९६ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानीचिन्तननिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३५।।

(आर्या)

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।। ४७।।[१]

(मंदाक्रांता)

सम्यग्दृष्टिस्त्यजति सकलं कर्मनोकर्मजातं
प्रत्याख्यानं भवति नियतं तस्य संज्ञानमूर्तेः।
सच्चारित्राण्यघकुलहराण्यस्य तानि स्युरुच्चैः
तं वंदेहं भवपरिभवक्लेशनाशाय नित्यम्।। १२७ ।।

(गाथा)

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी।। ९६ ।।

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-२२८

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(रोला)

केवलदर्शनज्ञानसौख्यमय परमतेज वह।
उसे देखते किसे न देखा कहना मुश्किल।।
उसे जानते किसे न जाना कहना मुश्किल।
उसे सुना तो किसे न सुना कहना मुश्किल।। ४८ ।।

ॐ ह्रीं आत्ममहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३६।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(अडिल्ल)

मुनिराजों के हृदयकमल का हंस जो।
निर्मल जिसकी दृष्टि ज्ञान की मूर्ति जो।।
सहज परम चैतन्य शक्तिमय जानिये।
सुखमय परमातमा सदा जयवंत है।। १२८।।

ॐ ह्रीं आनन्दरूपपरमात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२३७।।

अब ज्ञानी सदा किसप्रकार का चिन्तवन करते हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञानी विचारें देखे–जाने जो सभी को मैं वही।
जो ना ग्रहे परभाव को निज भाव को छोड़े नहीं।। ९७ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानीचिन्तवननिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३८।।

(अनुष्टुभ्)

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।। ४८।।[१]

(मालिनी)

जयति स परमात्मा केवलज्ञानमूर्तिः
सकलविमलदृष्टिः शाश्वतानंदरूपः।
सहजपरमचिच्छक्त्यात्मकः शाश्वतोयं
निखिलमुनिजनानां चित्तपंकेजहंसः।। १२८।।

(गाथा)

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी।। ९७।।

---

१. पद्मनन्दिपंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, छन्द २०

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(हरिगीत)

जो गृहीत को छोड़े नहीं पर न ग्रहे अग्राह्य को।
जाने सभी को मैं वही है स्वानुभूति गम्य जो।। ४९ ।।

ॐ ह्रीं त्यागोपादानशून्यात्मनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२३९।।

अब टीकाकार चार छन्द लिखते हैं, जिनमें पहले छन्द का पद्यानुवाद इसप्रकार हैं – (हरिगीत)

आतमा में आतमा को जानता है देखता।
बस एक पंचमभाव है जो नंतगुणमय आतमा।।
उस आतमा ने आजतक छोड़ा न पंचमभाव को।
और जो न ग्रहण करता पुद्गलिक परभाव को।। १२९ ।।

ॐ ह्रीं पंचमभावरूपात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४०।।

अब दो छन्दों में टीकाकार आत्मा की महिमा प्रगट करते हैं –

(रोला)

अन्य द्रव्य के आग्रह से जो पैदा होता।
उस तन को तज पूर्ण सहज ज्ञानात्मक सुख की।।
प्राप्ति हेतु नित लगा हुआ है निज आतम में।
अमृतभोजी देव लगे क्यों अन्य असन में।। १३० ।।

(अनुष्टुभ्)

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुंचति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ।। ४९।।[1]

(वसंततिलका)

आत्मानमात्मनि निजात्मगुणाढ्यमात्मा जानाति पश्यति च पंचमभावमेकम्।
तत्याज नैव सहजं परभावमन्यं गृह्णाति नैव खलु पौद्गलिकं विकारम्।। १२९।।

(शार्दूलविक्रीडित)

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिंतामणा–
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम्।
तच्चित्रं न विशुद्धपूर्णसहजज्ञानात्मने शर्मणे।
देवानाममृताशनोद्भवरुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने।। १३०।।

---

१. पूज्यपाद : समाधितंत्र, श्लोक २०

अन्य द्रव्य के कारण से उत्पन्न नहीं जो।
निज आतम के आश्रय से जो पैदा होता।।
उस अमृतमय सुख को पी जो सुकृत छोड़े।
प्रगटरूप से वे चित् चिन्तामणि को पावें।। १३१ ।।

ॐ ह्रीं निजसुखामृतात्मस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२४१।।

चौथे छन्द का पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(दोहा)

गुरुचरणों की भक्ति से जाने निज माहात्म्य।
ऐसा बुध कैसे कहे मेरा यह परद्रव्य।। १३२ ।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यममत्वरहितज्ञानीप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२४२।।

अब अबंधस्वभावी आत्मा का ध्यान करना ही धर्म है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो प्रकृति थिति अनुभाग और प्रदेश बंध बिन आतमा।
मैं हूँ वही ह्न यह सोचता ज्ञानी करे थिरता वहाँ।। ९८ ।।

ॐ ह्रीं अबंधस्वभावी-आत्मध्याननिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२४३।।

निर्द्वन्द्वं निरुपद्रवं निरुपमं नित्यं निजात्मोद्भवं
नान्यद्रव्यविभावनोद्भवमिदं शर्मामृतं निर्मलम्।
पीत्वा यः सुकृतात्मकः सुकृतमप्येतद्विहायाधुना
प्राप्नोति स्फुटमद्वितीयमतुलं चिन्मात्रचिंतामणिम्।। १३१।।

(आर्या)

को नाम वक्ति विद्वान् मम च परद्रव्यमेतदेव स्यात्।
निजमहिमानं जानन् गुरुचरणसमर्च्चनासमुद्भूतम्।। १३२।।

(गाथा)

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा।
सो हं इदि चिंतिज्जो तत्थेव य कुणदि थिरभावं।। ९८।।

अब टीकाकार मुनिराज स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

जो मूल शिव साम्राज्य परमानन्दमय चिद्रूप है।
बस ग्रहण करना योग्य है इस एक अनुपम भाव को।।
इसलिए हे मित्र सुन मेरे वचन के सार को।
इसमें रमो अति उग्र हो आनन्द अपरम्पार हो।। १३३ ।।

ॐ ह्रीं परमानन्दमयात्मध्यानप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२४४।।

अब सभी विभावभावों से सन्यास की विधि समझाते हैं –

(हरिगीत)

छोड़कर ममभाव निर्ममभाव में मैं थिर रहूँ।
बस स्वयं का अवलम्ब ले अवशेष सब मैं परिहरूँ।। ९९ ।।

ॐ ह्रीं सर्वविभावसन्यासविधिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२४५।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(रोला)

सभी शुभाशुभभावों के निषेध होने से।
अशरण होंगे नहीं रमेंगे निज स्वभाव में।।
अरे मुनीश्वर तो निशदिन निज में ही रहते।
निजानन्द के परमामृत में ही नित रमते।। ५० ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानात्मकशरणप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४६।।

(मंदाक्रांता)

प्रेक्षावद्भिः सहजपरमानन्दचिद्रूपमेकं
संग्राह्यं तैर्निरुपममिदं मुक्तिसाम्राज्यमूलम्।
तस्मादुच्चैस्त्वमपि च सखे मद्वचःसारमस्मिन्
श्रुत्वा शीघ्रं कुरु तव मतिं चिच्चमत्कारमात्रे।। १३३ ।।

(गाथा)

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोसरे।। ९९ ।।

(शिखरिणी)

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः संत्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विंदंत्येते परममृतं तत्र निरताः।। ५०।।[१]

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द-१०४

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं, जिसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(हरिगीत)

मन–वचन–तन व इंद्रियों की वासना का दमक मैं।
भव उदधि संभव मोह जलचर और कंचन कामिनी।।
की चाह को मैं ध्यानबल से चाहता हूँ छोड़ना।
निज आतमा में आतमा को चाहता हूँ जोड़ना।। १३४ ।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणोपायरूप आत्मध्यानप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४७।।

अब एकमात्र आत्मा ही उपादेय है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

मम ज्ञान में है आतमा दर्शन चरित में आतमा।
अर योग संवर और प्रत्याख्यान में भी आतमा।। १०० ।।

ॐ ह्रीं आत्मोपादेयत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२४८।।

अब टीकाकार तीन छन्द उद्धृत करते हैं –

(दोहा)

वही एक मेरे लिए परमज्ञान चारित्र।
पावन दर्शन तप वही निर्मल परम पवित्र।। ५१ ।।

(मालिनी)

अथ नियतमनोवाक्कायकृत्स्नेन्द्रियेच्छो
भवजलधिसमुत्थं मोहयादःसमूहम्।
कनकयुवतिवांच्छामप्यहं सर्वशक्त्या
प्रबलतरविशुद्धध्यानमय्या त्यजामि।। १३४।।

(गाथा)

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।। १००।।

(अनुष्टुभ्)

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम्।
चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मलं तपः।। ५१।।[१]

---

१. पद्मनन्दिपंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, श्लोक–३९

सत्पुरुषों के लिए वह एकमात्र संयोग।
मंगल उत्तम शरण अर नमस्कार के योग्य।। ५२।।
योगी जो अप्रमत्त हैं उन्हें एक आचार।
स्वाध्याय भी है वही आवश्यक व्यवहार।। ५३।।

ॐ ह्रीं एक-आत्मेवोपादेयत्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२४९।।

अब टीकाकार स्वयं दो छन्द लिखते हैं -

(हरिगीत)

इक आतमा ही बस रहा मम सहज दर्शन-ज्ञान में।
संवर में शुध उपयोग में चारित्र प्रत्याख्यान में।।
दुष्कर्म अर सत्कर्म ह्न इन सब कर्म के संन्यास में।
मुक्ति पाने के लिए अन कोई साधन है नहीं।। १३५।।

ॐ ह्रीं सारभूत-आत्मोपादेयत्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५०।।

(भुजंगप्रयात)

किया नष्ट जिसने है अघतिमिर को,
रहता सदा सत्पुरुष के हृदय में।
कभी विज्ञजन को निर्मल अनिर्मल,
निर्मल-अनिर्मल देता दिखाई।।

(अनुष्टुभ्)

नमस्यं च तदेवैकं तदेवैकं च मंगलम्।
उत्तमं च तदेवैकं तदेव शरणं सताम्।। ५२।।[१]
आचारश्च तदेवैकं तदैवावश्यकक्रिया।
स्वाध्यायस्तु तदेवैकमप्रमत्तस्य योगिनः।। ५३।।[२]

(मालिनी)

मम सहजसुदृष्टौ शुद्धबोधे चरित्रे
सुकृतदुरितकर्मद्वन्दसंन्यासकाले।
भवति स परमात्मा संवरे शुद्धयोगे
न च न च भुवि कोऽप्यन्योस्ति मुक्त्यै पदार्थः।। १३५।।

---

१. पद्मनन्दिपंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, श्लोक-४० २. वही, श्लोक-४१

जो नष्ट करता है अघ तिमिर को,
वह ज्ञानदीपक भगवान आतम।
अज्ञानियों के लिए तो गहन है,
पर ज्ञानियों को देता दिखाई।। १३६।।

ॐ ह्रीं ज्ञानदीप-आत्ममहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२५१।।

अब आत्मा संसार और मुक्त - दोनों अवस्थाओं में असहाय हैं, यह बताते हैं -

(हरिगीत)

अकेला ही मरे एवं जीव जन्मे अकेला।
मरण होता अकेले का मुक्त भी हो अकेला।। १०१ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः एकत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२५२।।

अब टीकाकार दो छन्द उद्धृत करते हैं -

(दोहा)

स्वयं करे भोगे स्वयं यह आतम जग माँहि।
स्वयं रुले संसार में स्वयं मुक्त हो जाँहि।। ५४।।

ॐ ह्रीं आत्मनः स्वतंत्रपरिणमनप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२५३।।

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति निर्मलं क्वचन निर्मलानिर्मलं
क्वचित्पुनरनिर्मलं गहनमेवमज्ञस्य यत्।
तदेव निजबोधदीपनिहताघभूछायकं
सतां हृदयपद्मसद्मनि च संस्थितं निश्चलम्।। १३६।।

(गाथा)

एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं।
एगस्स जादि मरणं एगो सिज्झदि णीरओ।। १०१।।

(अनुष्टुभ्)

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते।। ५४।।[1]

१. ग्रन्थ का नाम एवं श्लोक संख्या अनुपलब्ध है

(वीर)

जनम-मरण के सुख-दुख तुमने स्वयं अकेले भोगे हैं।
मात-पिता सुत-सुता बन्धुजन कोई साथ न देते हैं।।
यह सब टोली धूर्तजनों की अपने-अपने स्वारथ से।
लगी हुई है साथ तुम्हारे पर न कोई तुम्हारे हैं।। ५५।।

ॐ ह्रीं आत्मनः अशरणत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२५४।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं -

(वीर)

जीव अकेला कर्म घनेरे उनने इसको घेरा है।
तीव्र मोहवश इसने निज से अपना मुखड़ा फेरा है।।
जनम-मरण के दुःख अनंते इसने अबतक प्राप्त किये।
गुरु प्रसाद से तत्त्व प्राप्त कर निज में किया वसेरा है।। १३७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः स्वकतृत्त्वभोक्तृत्त्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।२५५।।

अब मेरा तो एकमात्र भगवान आत्मा ही है, अन्य कुछ भी मेरा नहीं है, यह बताते हैं - (हरिगीत)

ज्ञान-दर्शनमयी मेरा एक शाश्वत आतमा।
शेष सब संयोगलक्षण भाव आतम बाह्य हैं।। १०२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः एकत्वविभक्तस्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२५६।।

(वसंततिलका)

एकस्त्वमाविशसि जन्मनि संक्षये च भोक्तुं स्वयं स्वकृतकर्मफलानुबन्धम्।
अन्यो न जातु सुखदुःखविधौ सहायः स्वाजीवनाय मिलितं विटपेटकं ते।। ५५।।[1]

(मंदाक्रांता)

एको याति प्रबलदुरघाज्जन्म मृत्युं च जीवः
कर्मद्वन्द्वोद्भवफलमयं चारुसौख्यं च दुःखम्।
भूयो भुंक्ते स्वसुखविमुखः सन् सदा तीव्रमोहा-
देकं तत्त्वं किमपि गुरुतः प्राप्य तिष्ठत्यमुष्मिन्।। १३७ ।।

(गाथा)

एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।। १०२ ।।

---

१. श्री सोमदेवपंडितदेव : यशस्तिलकचंपूकाव्य, दूसरा अधिकार, छन्द ११९

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(वीर)

सदा शुद्ध शाश्वत परमातम मेरा तत्त्व अनेरा है।
सहज परम चिद् चिन्तामणि चैतन्य गुणों का बसेरा है।।
अरे कथंचित् एक दिव्य निज दर्शन–ज्ञान भरेला है।
अन्य भाव जो बहु प्रकार के उनमें कोई न मेरा है।। १३८ ।।

ॐ ह्रीं चिन्तामणिरूपात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२५७।।

अब अपने दोषों के निराकरण की बात करते हैं –

(हरिगीत)

मैं त्रिविध मन–वच–काय से सब दुश्चरित को छोड़ता।
अर त्रिविध चारित्र से अब मैं स्वयं को जोड़ता।। १०३ ।।

ॐ ह्रीं स्वदोषत्यागनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२५८।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(दोहा)

चरण द्रव्य अनुसार हो द्रव्य चरण अनुसार।
शिवपथगामी बनो तुम दोनों के अनुसार।। ५६ ।।

ॐ ह्रीं द्रव्य–चरणपरस्परसापेक्षमोक्षमार्गप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं।।२५९।।

(मालिनी)

अथ मम परमात्मा शाश्वतः कश्चिदेकः।
सहजपरमचिच्चिन्तामणिर्नित्यशुद्धः।।
निरवधिनिजदिव्यज्ञानदृग्भ्यां समृद्धः।
किमिह बहुविकल्पैर्मे फलं बाह्यभावैः।। १३८।।

(गाथा)

जं किंचि मे दुच्चरित्तं सव्वं तिविहेण वोसरे।
सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं।। १०३।।

(वसंततिलका)

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्गं द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य।। ५६।।[१]

१. प्रवचनसार, छन्द–१२

अब टीकाकार मुनिराज स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(दोहा)

जिनका चित्त आसक्त है निज आतम के माँहि।
सावधानी संयम विषैं उन्हें मरणभय नाँहि।। १३९ ।।

ॐ ह्रीं मरणभयरहितयतिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६०।।

अब अंतर्मुख सन्तों की भावशुद्धि का कथन करते हैं –

(हरिगीत)

सभी से समभाव मेरा ना किसी से वैर है।
छोड़ आशाभाव सब मैं समाधि धारण करूँ।। १०४ ।।

ॐ ह्रीं समाधिस्थितमुनिराजनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६१।।

अब टीकाकार एक छन्द उद्धृत करते हैं –

(रोला)

हे भाई ! तुम महासबल तज कर प्रमाद अब।
समतारूपी कुलदेवी को याद करो तुम।।
अज्ञ सचिव युत मोह शत्रु का नाशक है जो।
ऐसे सम्यग्ज्ञान चक्र को ग्रहण करो तुम।। ५७ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६२।।

(अनुष्टुभ्)

चित्तत्त्वभावनासक्तमतयो यतयो यमम्।
यतंते यातनाशीलयमनाशनकारणम्।। १३९ ।।

(गाथा)

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं समाहि पडिवज्जए।। १०४।।

(वसंततिलका)

मुक्त्वालसत्वमधिसत्त्वबलोपपन्नः स्मृत्वा परां च समतां कुलदेवतां त्वम्।
संज्ञानचक्रमिदमंग गृहाण तूर्ण– मज्ञानमन्त्रियुतमोहरिपूपमर्दि ।। ५७।।

---

१. योगीन्द्रदेव, अमृताशीति, छन्द–२१

अब टीकाकार मुनिराज स्वयं दो छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

मुक्त्यांगना का भ्रमर अर जो मोक्षसुख का मूल है।
दुर्भावनातमविनाशक दिनकरप्रभा समतूल है।।
संयमीजन सदा संमत रहें समताभाव से।
मैं भाऊँ समताभाव को अत्यन्त भक्तिभाव से।। १४०।।

ॐ ह्रीं समताभावप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६३।।

(हरिगीत)

जो योगियों को महादुर्लभ भाव अपरंपार है।
त्रैलोक्यजन अर मुनिवरों का अनोखालंकार है।।
सुखोदधि के ज्वार को जो पूर्णिमा का चन्द्र है।
दीक्षांगना की सखी यह समता सदा जयवंत है।। १४१।।

ॐ ह्रीं समताभावप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६४।।

अब निश्चयप्रत्याख्यान करनेवाले सन्त कैसे होते हैं, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो निष्कषायी दान्त है भयभीत है संसार से।
व्यवसाययुत उस शूर को सुखमयी प्रत्याख्यान है।। १०५ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानस्वरूपयतिनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६५।।

(वसंततिलका)

मुक्त्यंगनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं दुर्भावनातिमिरसंहतिचन्द्रकीर्तिम्।
संभावयामि समतामहमुच्चकैस्तां या संमता भवति संयमिनामजस्रम्।। १४०।।

(हरिणी)

जयति समता नित्यं या योगिनामपि दुर्लभा
निजमुखसुखवार्धिप्रस्फारपूर्णशशिप्रभा।
परमयमिनां प्रव्रज्यास्त्रीमनःप्रियमैत्रिका
मुनिवरगणस्योच्चैः सालंक्रिया जगतामपि।। १४१।।

(गाथा)

णिक्कसायस्स दन्तस्स सूरस्स ववसायिणो।
संसारभयभीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे।। १०५।।

अब टीकाकार स्वयं एक छन्द लिखते हैं –

(हरिगीत)

अरे समतासुन्दरी के कर्ण का भूषण कहा।
और दीक्षा सुन्दरी की जवानी का हेतु जो।।
अरे प्रत्याख्यान वह जिनदेव ने जैसा कहा।
निर्वाण सुख दातार वह तो सदा ही जयवंत है।। १४२ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानमहिमाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६६।।

अब अंतिम गाथा में अधिकार का उपसंहार करते हैं –

(हरिगीत)

जो जीव एवं करम के नित करे भेदाभ्यास को।
वह संयमी धारण करे रे नित्य प्रत्याख्यान को।। १०६ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रत्याख्यानाधिकारोपसंहारक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६७।।

अब टीकाकार मुनिराज पूरे अधिकार के उपसंहार में नौ छन्द लिखते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार हैं –

(रोला)

भाविकाल के भावों से तो मैं निवृत्त हूँ।
इसप्रकार के भावों को तुम नित प्रति भावो।।
निज स्वरूप जो सुख निधान उसको हे भाई!
यदि छूटना कर्मफलों से प्रतिदिन भावो।। १४३ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६८।।

(हरिणी)

जयति सततं प्रत्याख्यानं जिनेन्द्रमतोद्भवं
परमयमिनामेतन्निर्व्वाणसौख्यकरं परम्।
सहजसमतादेवीसत्कर्णभूषणमुच्चकै:
मुनिप शृणु ते दीक्षाकान्तातियौवनकारणम्।। १४२।।

(गाथा)

एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं।
पच्चक्खाणं सक्कदि धरिदुं सो संजदो णियमा।। १०६।।

(रथोद्धता)

भाविकालभवभावनिवृत्त:
सोहमित्यनुदिनं मुनिनाथ:।
भावयेदखिलसौख्यनिधानं
स्वस्वरूपममलं मलमुक्त्यै।। १४३।।

(रोला)

परमतत्त्व तो अरे भयंकर भव सागर की।
नौका है ह्न यह बात कही है परमेश्वर ने।।
इसीलिए तो मैं भाता हूँ परमतत्त्व को।
अरे निरन्तर अन्तरतम से भक्तिभाव से।। १४४ ।।

ॐ ह्रीं परमतत्त्वभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६९।।

(रोला)

भ्रान्ति नाश से जिनकी मति चैतन्यतत्त्व में।
निष्ठित है वे संत निरंतर प्रत्याख्यान में।।
अन्य मतों में जिनकी निष्ठा वे योगीजन।
भ्रमे घोर संसार नहीं वे प्रत्याख्यान में।। १४५ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानरतमुनिराजप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७०।।

(रोला)

जो शाश्वत आनन्द जगतजन में प्रसिद्ध है।
वह रहता है सदा अनूपम सिद्ध पुरुष में।।
ऐसी थिति में जड़बुद्धि बुधजन क्यों रे रे।
कामबाण से घायल हो उसको क्यों चाहे ?।। १४६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७१।।

(स्वागता)

घोरसंसृतिमहार्णवभास्वद्यानपात्रमिदमाह जिनेन्द्रः।
तत्त्वतः परमतत्त्वमजस्रं भावयाम्यहमतो जितमोहः।। १४४।।

(मंदाक्रांता)

प्रत्याख्यानं भवति सततं शुद्धचारित्रमूर्तेः
भ्रान्तिध्वंसात्सहजपरमानंदचिन्निष्ठबुद्धेः।
नास्त्यन्येषामपरसमये योगिनामास्पदानां
भूयो भूयो भवति भविनां संसृतिर्घोररूपा।। १४५ ।।

(शिखरिणी)

महानंदानंदो जगति विदितः शाश्वतमयः
स सिद्धात्मन्युच्चैर्नियतवसतिर्निर्मलगुणे।
अमी विद्वान्सोपि स्मरनिशितशस्त्रैरभिहताः
कथं कांक्षंत्येनं बत कलिहतास्ते जडधियः।। १४६।।

(रोला)

अघ वृक्षों की अटवी को वह्नि समान है।
ऐसा सत् चारित्र सदा है प्रत्यख्यान में।।
इसीलिए हे भव्य स्वयं की बुद्धि को तू।
आत्मतत्त्व में लगा सहज सुख देने वाले।। १४७ ।।

ॐ ह्रीं सत्चारित्रमयप्रत्याख्यानप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७२।।

(रोला)

जो सुस्थित है धीमानों के हृदय कमल में।
अर जिसने मोहान्धकार का नाश किया है।।
सहजतत्त्व निज के प्रकाश से ज्योतित होकर।
अरे प्रकाशन मात्र और जयवंत सदा है।। १४८ ।।

ॐ ह्रीं सहजात्मतत्त्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७३।।

(रोला)

सकल दोष से दूर अखण्डित शाश्वत है जो।
भवसागर में डूबों को नौका समान है।।
संकटरूपी दावानल को जल समान जो।
भक्तिभाव से नमस्कार उस सहजतत्त्व को।। १४९ ।।

ॐ ह्रीं शाश्वत सहजतत्त्वप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७४।।

(मंदाक्रांता)

प्रत्याख्यानाद्भवति यमिषु प्रस्फुटं शुद्धशुद्धं
सच्चारित्रं दुरघतरुसांद्राटवीवह्निरूपम्।
तत्त्वं शीघ्रं कुरु तव मतौ भव्यशार्दूल नित्यं
यत्किंभूतं सहजसुखदं शीलमूलं मुनीनाम्।। १४७ ।।

(मालिनी)

जयति सहजतत्त्वं तत्त्वनिष्णातबुद्धेः
हृदयसरसिजाताभ्यन्तरे संस्थितं यत्।
तदपि सहजतेजः प्रास्तमोहान्धकारं
स्वरसविसरभास्वद्बोधविस्फूर्तिमात्रम्।। १४८ ।।

(पृथ्वी)

अखंडितमनारतं सकलदोषदूरं परं
भवांबुनिधिमग्नजीवततियानपात्रोपमम्।
अथ प्रबलदुर्गवर्गदववह्निकीलालकं
नमामि सततं पुनः सहजमेव तत्त्वं मुदा।। १४९ ।।

(रोला)

जिनमुख से है विदित और थित है स्वरूप में।
रत्नदीप सा जगमगात है मुनिमन घट में।।
मोहकर्म विजयी मुनिवर से नमन योग्य है।
उस सुखमंदिर सहजतत्त्व को मेरा वंदन।। १५० ।।

ॐ ह्रीं सुखमन्दिरस्वरूपसहजतत्त्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७५।।

(रोला)

पुण्य-पाप को नाश काम को खिरा दिया है।
महल ज्ञान का अरे काम ना शेष रहा है।।
पुष्ट गुणों का धाम मोह रजनी का नाशक।
तत्त्ववेदिजन नमें उसी को हम भी नमते।। १५१ ।।

ॐ ह्रीं कृतकृत्यरूपसहजतत्त्वप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७६।।

।। परमालोचनाधिकार ।।

अधिकार के आरंभ में निश्चय आलोचना का स्वरूप एक गाथा में कहते हैं, उसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(हरिगीत)

जो कर्म से नोकर्म से अर विभावगुणपर्याय से।
भी रहित ध्यावे आतमा आलोचना उस श्रमण के।। १०७।।

ॐ ह्रीं निश्चयालोचनायुक्त श्रमणप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।२६९।।

(पृथ्वी)

जिनप्रभुमुखारविन्दविदितं स्वरूपस्थितं
मुनीश्वरमनोगृहान्तरसुरत्नदीपप्रभम् ।
नमस्यमिह योगिभिर्विजितदृष्टिमोहादिभिः
नमामि सुखमंदिरं सहजतत्त्वमुच्चैरदः।। १५० ।।
प्रनष्टदुरितोत्करं प्रहतपुण्यकर्मव्रजं
प्रधूतमदनादिकं प्रबलबोधसौधालयम् ।
प्रणामकृततत्त्ववित् प्रकरणप्रणाशात्मकं
प्रबृद्धगुणमंदिरं प्रहृतमोहरात्रिं नुमः।। १५१ ।।

(गाथा)

णोकम्मकम्मरहियं विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं।
अप्पाणं जो झायदि समणस्सालोयणं होदि।। १०७ ।।

टीकाकार मुनिराज आचार्य अमृतचन्द्रकृत आत्मख्याति का एक कलश उद्धृत करते हैं, जिसमें आलोचना की प्रेरणा दी है –

(रोला)

मोहभाव से वर्तमान में कर्म किये जो।
उन सबका आलोचन करके ही अब मैं तो।।
वर्त रहा हूँ अरे निरन्तर स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।। ५८ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयालोचनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७०।।

अब उपासकाध्ययन का श्लोक उद्धृत है, जिसमें कृत–कारित–अनुमोदना से पापों के आलोचना की प्रेरणा दी है –

(रोला)

किये कराये अनुमोदित पापों का अब तो।
आलोचन करता हूँ मैं निष्कपट भाव से।।
अरे पूर्णतः उन्हें छोड़ने का अभिलाषी।
धारण करता यह महान व्रत अरे आमरण।। ५९ ।।

ॐ ह्रीं कृतकारितानुमोदित–पापालोचनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७१।।

टीकाकार मुनिराज स्वयं एक कलश में पुण्य–पाप के भावों की आलोचना की प्रेरणा देते हैं –

(आर्या)

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।। ५८।।[१]
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम्।। ५९।।[२]

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द–२२७

२. आचार्य समन्तभद्र : रत्नकरण्ड श्रावकाचार, छन्द–१२५

(रोला)

पुण्य-पाप के भाव घोर संसार मूल हैं।
बार-बार उन सबका आलोचन करके मैं।।
शुद्ध आतमा का अवलम्बन लेकर विधिवत्।
द्रव्यकर्म को नाश ज्ञानलक्ष्मी को पाऊँ।। १५२ ।।

ॐ ह्रीं पुण्य-पापभावालोचक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७२।।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव आलोचना के भेद एक गाथा में कहते हैं –

(हरिगीत)

आलोचनं आलुंछनं अर भावशुद्धि अविकृतिकरण।
आलोचना के चार लक्षण भेद आगम में कहे।। १०८।।

ॐ ह्रीं आलोचनाभेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७३।।

टीकाकार मुनिराज एक छन्द में आलोचना के भेद जानकर स्वात्मा में लीन होनेवाले भव्यजीवों को नमस्कार करते हैं –

(हरिगीत)

मुक्तिरूपी अंगना के समागम के हेतु जो।
भेद हैं आलोचना के उन्हें जो भवि जानकर।।
निज आतमा में लीन हो नित आत्मनिष्ठित ही रहें।
हो नमन बारंबार उनको जो सदा निजरत रहें।। १५३ ।।

ॐ ह्रीं आलोचनाधारकभव्यजीवप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७४।।

(स्रग्धरा)

आलोच्यालोच्य नित्यं सुकृतमसुकृतं घोरसंसारमूलं
शुद्धात्मानं निरुपधिगुणं चात्मनैवावलम्बे।
पश्चादुच्चैः प्रकृतिमखिलां द्रव्यकर्मस्वरूपां
नीत्वा नाशं सहजविलसद्बोधलक्ष्मीं व्रजामि।। १५२।।

(गाथा)

आलोयणमालुंछण वियडीकरणं च भावसुद्धी य।
चउविहमिह परिकहियं आलोयणलक्खणं समए।। १०८।।

(इन्द्रवज्रा)

आलोचनाभेदममुं विदित्वा
मुक्त्यंगनासंगमहेतुभूतम्।
स्वात्मस्थितिं याति हि भव्यजीवः
तस्मै नमः स्वात्मनि निष्ठिताय।। १५३।।

आचार्यदेव आलचोना के प्रथम भेद का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

उपदेश यह जिनदेव का परिणाम को समभाव में।
स्थाप कर निज आतमा को देखना आलोचनम्।। १०९ ।।

ॐ ह्रीं आलोचनास्वरूपनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७३।।

टीकाकार मुनिराज छह छन्द लिखते हैं, जिसमें से प्रथम छन्द में सिद्ध भगवान की स्तुति की गई है – (हरिगीत)

जो आतमा को स्वयं में अविचलनिलय ही देखता।
वह आतमा आनन्दमय शिवसंगनी सुख भोगता।।
संयतों से इन्द्र चक्री और विद्याधरों से।
भी वंद्य गुणभंडार आतमराम को वंदन करूँ।। १५४।।

ॐ ह्रीं सर्ववंद्यसिद्धनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७४।।

दूसरे छन्द में पुराण–पुरुष भगवान आत्मा की स्तुति करते हैं –

(हरिगीत)

जगतजन के मन–वचन से अगोचर जो आतमा।
वह ज्ञानज्योति पापतम नाशक पुरातन आतमा।।
जो परम संयमिजनों के नित चित्त पंकज में बसे।
उसकी कथा क्या करें क्या न करें हम नहिं जानते।। १५५ ।।

ॐ ह्रीं पुराणपुरुषात्मस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७५।।

(गाथा)

जो पस्सदि अप्पाणं समभावे संठवित्तु परिणामं।
आलोयणमिदि जाणह परमजिणंदस्स उवएसं।। १०९ ।।

(स्रग्धरा)

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलनिलयं चात्मना पश्यतीत्थं।
यो मुक्तिश्रीविलासानतनुसुखमयान् स्तोककालेन याति।।
सोऽयं वंद्यः सुरेशैर्यमधरततिभिः खेचरैर्भूचरैर्वा।
तं वंदे सर्ववंद्यं सकलगुणनिधिं तद्गुणापेक्षयाहम्।। १५४ ।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा स्पष्टः परमयमिनां चित्तपंकेजमध्ये
ज्ञानज्योतिःप्रहतदुरितध्वान्तपुंजः पुराणः।
सोऽतिक्रान्तो भवति भविनां वाङ्मनोमार्गमस्मि–
न्नारातीये परमपुरुषे को विधिः को निषेधः।। १५५ ।।

तीसरे छन्द में योगियों को गम्य चैतन्यमय सहज तत्त्व की प्रशंसा की गयी है –

(हरिगीत)

इन्द्रियरव से मुक्त अर अज्ञानियों से दूर है।
अर नय–अनय से दूर फिर भी योगियों को गम्य है।।
सदा मंगलमय सदा उत्कृष्ट आतमतत्त्व जो।
वह पापभावों से रहित चेतन सदा जयवंत है।। १५६ ।।

ॐ ह्रीं योगिगम्यचैतन्यात्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७६।।

चौथे छन्द में अपूर्व शुद्धात्मतत्त्व की भावना भाते हैं –

(हरिगीत)

श्रीपरमगुरुओं की कृपा से भव्यजन इस लोक में।
निज सुख सुधासागर निमज्जित आतमा को जानकर।।
नित प्राप्त करते सहजसुख निर्भेद दृष्टिवंत हो।
उस अपूरब तत्त्व को मैं भा रहा अति प्रीति से।। १५७ ।।

ॐ ह्रीं अपूर्वात्मतत्त्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७७।।

पाँचवें छन्द में मुक्ति प्राप्त करने की भावना से परमात्म तत्त्व की संभावना करते हैं –

(हरिगीत)

सब ग्रन्थ से निर्ग्रन्थ शुध परभावदल से मुक्त है।
निर्मोह है निष्पाप है वह परम आतमतत्त्व है।।

(पृथ्वी)

जयत्यनघचिन्मयं सहजतत्त्वमुच्चैरिदं
विमुक्तसकलेन्द्रियप्रकरजातकोलाहलम्।
नयानयनिकायदूरमपि योगिनां गोचरं
सदा शिवमयं परं परमदूरमज्ञानिनाम्।। १५६ ।।

(मंदाक्रांता)

शुद्धात्मानं निजसुखसुधावार्धिमज्जन्तमेनं
बुद्ध्वा भव्यः परमगुरुतः शाश्वतं शं प्रयाति।
तस्मादुच्चैरहमपि सदा भावयाम्यत्यपूर्वं
भेदाभावे किमपि सहजं सिद्धिभूसौख्यशुद्धम्।। १५७ ।।

निर्वाणवनिताजन्यसुख को प्राप्त करने के लिए।
उस तत्त्व को करता नमन नित भावना भी उसी की।। १५८ ।।

ॐ ह्रीं परमात्मतत्त्वनिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७८।।

छठवें छन्द में चिन्मात्र आत्मा की भावनापूर्वक मुक्तिमार्ग को नमन किया गया है –

(हरिगीत)

भिन्न जो निजभाव से उन विभावों को छोड़कर।
मैं करूँ नित चिन्मात्र निर्मल आतमा की भावना।।
कर जोड़कर मैं नमन करता मुक्ति मारग को सदा।
इस दुखमयी भव–उदधि से बस पार पाने के लिए।। १५९ ।।

ॐ ह्रीं चिन्मात्रनिर्मलात्मप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२७९।।

अब ग्रन्थकार आचार्यकुन्दकुन्ददेव आलुंछन का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

कर्मतरु का मूल छेदक जीव का परिणाम जो।
समभाव है बस इसलिए ही उसे आलुंछन कहा।। ११० ।।

ॐ ह्रीं आलुंछनस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८०।।

अब टीकाकार दो छन्द लिखते हैं, जिनमें पहले छन्द में पंचम पारिणामिक भाव की महिमा एवं दूसरे छन्द में ज्ञानज्योति की महिमा बताते हैं –

(वसंततिलका)

निर्मुक्तसंगनिकरं परमात्मतत्त्वं निर्मोहरूपमनघं परभावमुक्तम्।
संभावयाम्यहमिदं प्रणमामि नित्यं निर्वाणयोषिदतनूद्भवसंमदाय।। १५८।।
त्यक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं चिन्मात्रमेकममलं परिभावयामि।
संसारसागरसमुत्तरणाय नित्यं निर्मुक्तिमार्गमपि नौम्यविभेदमुक्तम्।। १५९।।

(गाथा)

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।
साहीणो समभावो आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं।। ११०।।

(हरिगीत)

हैं आत्मनिष्ठा परायण जो मूल उनकी मुक्ति का।
जो सहजवस्थारूप पुण्य-पाप एकाकार है।।
जो शुद्ध है नित शुद्ध एवं स्वरस से भरपूर है।
जयवंत पंचमभाव वह जो आत्मा का नूर है।। १६० ।।

ॐ ह्रीं पंचमभावप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८१।।

(हरिगीत)

इस जगतजन की ज्ञानज्योति अरे काल अनादि से।
रे मोहवश मदमत्त एवं मूढ है निजकार्य में।।
निर्मोह तो वह ज्ञानज्योति प्राप्त कर शुधभाव को।
उज्ज्वल करे सब ओर से तब सहजवस्था प्राप्त हो।। १६१ ।।

ॐ ह्रीं निर्मोहज्ञानज्योतिप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८२।।

अब आलोचना के तीसरे भेद अविकृतिकरण की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

निर्मलगुणों का निलय आतम कर्म से भिन जीव को।
भाता सदा जो आतमा अविकृतिकरण वह जानना।। १११ ।।

ॐ ह्रीं अविकृतिकरणस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८३।।

(मंदाक्रांता)

एको भावः स जयति सदा पंचमः शुद्धशुद्धः
कर्मारातिस्फुटितसहजावस्थया संस्थितो यः।
मूलं मुक्तेर्निखिलयमिनामात्मनिष्ठापराणां
एकाकारः स्वरसविसरापूर्णपुण्यः पुराणः।। १६०।।

आसंसारादखिलजनतातीव्रमोहोदयात्सा
मत्ता नित्यं स्मरवशगता स्वात्मकार्यप्रमुग्धा।
ज्ञानज्योतिर्धवलितककुम्भमंडलं शुद्धभावं
मोहाभावात्स्फुटितसहजावस्थमेषा प्रयाति।। १६१।।

(गाथा)

कम्मादो अप्पाणं भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।
मज्झत्थभावणाए वियडीकरणं ति विण्णेयं।। १११ ।।

टीकाकार मुनिराज नौ छन्द लिखते हैं, जिनमें से पहले दो छन्दों में भगवान आत्मा की ही प्रशंसा करते हैं –

(हरिगीत)

अरे अन्तःशुद्ध शम–दमगुणकमलनी हंस जो।
आनन्द गुण भरपूर कर्मों से सदा है भिन्न जो।।
चैतन्यमूर्ति अनूप नित छोड़े न ज्ञानस्वभाव को।
वह आत्मा न ग्रहे किंचित् किसी भी परभाव को।। १६२ ।।

ॐ ह्रीं परभावाग्राहकचैतन्यमूर्तिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८४।।

(हरिगीत)

अरे निर्मलभाव अमृत उदधि में डुबकी लगा।
धोये हैं पापकलंक एवं शान्त कोलाहल किया।।
इन्द्रियों से जन्य अक्षय अलख गुणमय आतमा।
रे स्वयं अन्तर्ज्योति से तम नाश जगमग हो रहा।। १६३ ।।

ॐ ह्रीं निर्मलात्मज्योतिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२८५।।

आगामी छन्द में मुनिराज के समताभाव की प्रशंसा करते हैं –

(रोला)

अरे सहज ही घोर दुःख संसार घोर में।
प्रतिदिन तपते जीव अनंते घोर दुःखों से।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा भिन्नो भवति सततं द्रव्यनोकर्मराशे–
रन्तःशुद्धः शमदमगुणाम्भोजिनीराजहंसः।
मोहाभावादपरमखिलं नैव गृह्णाति सोऽयं
नित्यानंदाद्यनुपमगुणश्चिच्चमत्कारमूर्तिः।। १६२ ।।

अक्षय्यान्तर्गुणमणिगणः शुद्धभावामृताम्भो–
राशौ नित्यं विशदविशदे क्षालितांहः कलंकः।
शुद्धात्मा यः प्रहतकरणग्रामकोलाहलात्मा
ज्ञानज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिरुच्चैश्चकास्ति।। १६३ ।।

किन्तु मुनिजन तो नित समता के प्रसाद से।
अरे शमामृत हिम की शीतलता पाते हैं।। १६४ ।।

ॐ ह्रीं मुनिनः समताभावप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८६।।

इस छन्द में टीकाकार मुमुक्षुओं के मार्ग का वर्णन करके उसपर स्वयं चलने की भावना भाते हैं –

(रोला)

रे विभावतन मुक्त जीव तो कभी न पाते।
क्योंकि उन्होंने सुकृत-दुष्कृत नाश किये हैं।।
इसीलिए तो सुकृत-दुष्कृत कर्मजाल तज।
अरे जा रहा हूँ मुमुक्षुओं के मारग में।। १६५ ।।

ॐ ह्रीं मुमुक्षुपथप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२८७।।

आगामी छन्द में शरीर को संसार की मूर्ति कहकर ज्ञानशरीरी भगवान आत्मा का आश्रय लेने की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

अस्थिर पुद्गलखंध तन तज भवमूरत जान।
सदा शुद्ध जो ज्ञानतन पाया आतम राम।। १६६।।

ॐ ह्रीं शुद्धज्ञानमूर्ति-आत्मप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८७।।

(वसंततिलका)

संसारघोरसहजादिभिरेव रौद्रै-र्दुःखादिभिः प्रतिदिनं परितप्यमाने।
लोके शमामृतमयीमिह तां हिमानीं यायादयं मुनिपतिः समताप्रसादात्।। १६४ ।।
मुक्तः कदापि न हि याति विभावकायं तद्धेतुभूतसुकृतासुकृतप्रणाशात्।
तस्मादहं सुकृतदुष्कृतकर्मजालं मुक्त्वा मुमुक्षुपथमेकमिह व्रजामि।। १६५ ।।

(अनुष्टुभ्)

प्रपद्येऽहं सदाशुद्धमात्मानं बोधविग्रहम्।
भवमूर्तिमिमां त्यक्त्वा पुद्गलस्कन्धबन्धुराम्।। १६६ ।।

इस छन्द में संसाररूपी रोग की उत्कृष्ट औषधि वीतरागभाव हैं – यह बताते हैं –

(दोहा)

शुध चेतन की भावना रहित शुभाशुभभाव।
औषधि है भव रोग की वीतरागमय भाव।। १६७ ।।

ॐ ह्रीं भवरोगौषधि-वीतरागभावप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२८८।।

पंचपरावर्तनरूप संसार के कारण शुभाशुभभाव हैं; अतः उनसे रहित मुक्ति के कारणरूप शुद्धात्मा की भावना भाते हैं –

(रोला)

अरे पंचपरिवर्तनवाले भव के कारण।
विविध विकल्पोंवाले शुभ अर अशुभ कर्म हैं।।
अरे जानकर ऐसा जनम-मरण से विरहित।
मुक्ति प्रदाता शुद्धातम को नमन करूँ मैं।। १६८ ।।

ॐ ह्रीं पंचपरावर्तन-संसारकारणशुभाशुभावविरहितात्मभावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२८९।।

आगामी दो छन्दों में वचनातीत व मुनिजनों के मन के वासी शुद्धात्मा की प्रशंसा करते हैं –

(रोला)

यद्यपि आदि-अन्त से विरहित आतमज्योति।
सत्य और सुमधुर वाणी का विषय नहीं है।।

(अनुष्टुभ्)

अनादि मम संसाररोगस्यागदमुत्तमम्।
शुभाशुभविनिर्मुक्तं शुद्धचैतन्यभावना ।। १६७।।

(मालिनी)

अथ विविधविकल्पं पंचसंसारमूलं
शुभमशुभसुकर्म प्रस्फुटं तद्विदित्वा।
भवमरणविमुक्तं पंचमुक्तिप्रदं यं
तमहमभिनमामि प्रत्यहं भावयामि।। १६८।।

फिर भी गुरुवचनों से आतमज्योति प्राप्त कर।
सम्यग्दृष्टि जीव मुक्तिवधु वल्लभ होते।। १६९ ।।

ॐ ह्रीं वचनानीतशुद्धात्मप्रशंशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९०।।

(रोला)

अरे रागतम सहजतेज से नाश किया है।
मुनिमनगोचर शुद्ध शुद्ध उनके मन बसता।।
विषयी जीवों को दुर्लभ जो सुख समुद्र है।
शुद्ध ज्ञानमय शुद्धातम जयवंत वर्तता।। १७० ।।

ॐ ह्रीं मुनिमनगोचरशुद्धात्मप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९१।।

अब आलोचना के चौथे भेद भावशुद्धि की चर्चा करते हैं –

(हरिगीत)

मदमानमायालोभ विरहित भाव को जिनमार्ग में।
भावशुद्धि कहा लोक–अलोकदर्शी देव ने।। ११२ ।।

ॐ ह्रीं भावशुद्धिस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२९२।।

इस अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज नौ छन्द लिखते हैं, जिनमें से प्रथम दो छन्दों में आलोचना का फल बताकर उसकी प्राप्ति की भावना भाते हैं –

(मालिनी)

अथ सुललितवाचां सत्यवाचामपीत्थं
न विषयमिदमात्मज्योतिराद्यन्तशून्यम्।
तदपि गुरुवचोभिः प्राप्य यः शुद्धदृष्टिः
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। १६९।।
जयति सहजतेजःप्रास्तरागान्धकारो
मनसि मुनिवराणां गोचरः शुद्धशुद्धः।
विषयसुखरतानां दुर्लभः सर्वदायं
परमसुखसमुद्रः शुद्धबोधोऽस्तनिद्रः।। १७०।।

(गाथा)

मदमाणमायलोहविवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति।
परिकहियं भव्वाणं लोयालोयप्पदरिसीहिं।। ११२।।

(हरिगीत)

जिनवर कथित आलोचना के भेद सब पहिचान कर।
भव्य के श्रद्धेय ज्ञायकभाव को भी जानकर।।
जो भव्य छोड़े सर्वत: परभाव को पर जानकर।
हो वही वल्लभ परमश्री का परमपद को प्राप्त कर।। १७१ ।।

ॐ ह्रीं आलोचनाफलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२९३।।

(रोला)

संयमधारी सन्तों को फल मुक्तिमार्ग का।
जो देती है और स्वयं के आत्मतत्त्व में।।
नियत आचरण के अनुरूप आचरणवाली।
वह आलोचना मेरे मन को कामधेनु हो।। १७२ ।।

ॐ ह्रीं आलोचनाप्राप्तिभावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९४।।

आगामी दो छन्दों में शुद्धात्मा की प्रशंसा करते हैं –

(रोला)

तीन लोक के ज्ञायक निर्विकल्प तत्त्व को।
जो मुमुक्षुजन जान उसी की सिद्धि के लिए।।

(मालिनी)

अथ जिनपतिमार्गालोचनाभेदजालं
परिहृतपरभावो भव्यलोक: समन्तात्।
तदखिलमवलोक्य स्वस्वरूपं च बुद्ध्वा
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूप:।। १७१।।

(वसंततिलका)

आलोचना सततशुद्धनयात्मिका या निर्मुक्तिमार्गफलदा यमिनामजस्रम्।
शुद्धात्मतत्त्वनियताचरणानुरूपा स्यात्संयतस्य मम सा किल कामधेनु:।। १७२।।

शुद्ध शील आचरे रमे निज आतम में नित।
सिद्धि प्राप्त कर मुक्तिवधु के स्वामी होते।। १७३ ।।

ॐ ह्रीं त्रिलोकज्ञायक-निर्विकल्पशुद्धात्मतत्त्वप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२९५।।

(रोला)

आत्मतत्त्व में मग्न मुनिजनों के मन में जो।
वह विशुद्ध निर्बाध ज्ञानदीपक निज आतम।।
मुनिमनतम का नाशक नौका भवसागर की।
साधुजनों से वंद्य तत्त्व को वंदन करता।। १७४ ।।

ॐ ह्रीं मुनिनां ध्येय-वंद्यशुद्धात्मतत्त्वप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२९५।।

इस छन्द में टीकाकार खेद व आश्चर्य व्यक्त करते हुए समस्त पापों के निषेध की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

बुद्धिमान होने पर भी क्या कोई तपस्वी।
ऐसा कह सकता कि करो तुम नये पाप को।।

(शालिनी)

शुद्धं तत्त्वं बुद्धलोकत्रयं यद्
बुद्ध्वा बुद्ध्वा निर्विकल्पं मुमुक्षुः।
तत्सिद्ध्यर्थं शुद्धशीलं चरित्वा
सिद्धिं यायात् सिद्धिसीमन्तिनीशः।। १७३ ।।

(स्रग्धरा)

सानन्दं तत्त्वमज्जज्जिनमुनिहृदयाम्भोजकिंजल्कमध्ये
निर्व्याबाधं विशुद्धं स्मरशरगहनानीकदावाग्निरूपम्।
शुद्धज्ञानप्रदीपप्रहतयमिमनोगेहघोरान्धकारं
तद्वन्दे साधुवन्द्यं जननजलनिधौ लंघने यानपात्रम्।। १७४ ।।

अरे खेद आश्चर्य शुद्ध आतम को जाने।
फिर भी ऐसा कहे समझ के बाहर है यह।। १७५ ।।

ॐ ह्रीं समस्तपापनिषेधकश्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९६।।

अब दो छन्दों में सात तत्त्वों में सहज निर्मल आत्मतत्त्व की प्रशंसा करते हैं –

(रोला)

सब तत्त्वों में सहज तत्त्व निज आतम ही है।
सदा अनाकुल सतत् सुलभ निज आतम ही है।।
परमकला सम्पन्न प्रगट घर समता का जो।
निज महिमारत आत्मतत्त्व जयवंत सदा है।। १७६ ।।

सात तत्त्व में प्रमुख सहज सम्पूर्ण विमल है।
निरावरण शिव विशद नित्य अत्यन्त अमल है।।
उसे नमन जो अति दूर मुनि–मन–वचनों से।
परपंचों से विलग आत्म आनन्द मगन है।। १७७ ।।

ॐ ह्रीं सप्ततत्त्वेषु सहजनिर्मलात्मतत्त्वप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२९७।।

(हरिणी)

अभिनवमिदं पापं याया: समग्रधियोऽपि ये
विदधति परं ब्रूम: किं ते तपस्विन एव हि।
हृदि विलसितं शुद्धं ज्ञानं च पिंडमनुत्तमं
पदमिदमहो ज्ञात्वा भूयोऽपि यान्ति सरागताम्।। १७५ ।।
जयति सहजं तत्त्वं तत्त्वेषु नित्यमनाकुलं
सततसुलभं भास्वत्सम्यग्दृशां समतालयम्।
परमकलया सार्धं वृद्धं प्रवृद्धगुणैर्निजै:।
स्फुटितसहजावस्थं लीनं महिम्नि निजेऽनिशम्।। १७६ ।।
सहजपरमं तत्त्वं तत्त्वेषु सप्तसु निर्मलं
सकलविमलज्ञानावासं निरावरणं शिवम्।
विशदविशदं नित्यं बाह्यप्रपंचपराङ्मुखं
किमपि मनसां वाचां दूरं मुनेरपि तन्नुम:।। १७७ ।।

अन्तिम दो छन्द में वीतरागी-जिनेन्द्रदेव की महिमा गाते हैं -

(रोला)

अरे शान्तरसरूपी अमृत के सागर को।
नित्य उल्लसित करने को तुम पूर्णचन्द हो।।
मोहतिमिर के नाशक दिनकर भी तो तुम हो।
हे जिन निज में लीन सदा जयवंत जगत में।। १७८ ।।

वे जिनेन्द्र जयवन्त परमपद में स्थित जो।
जिनने जरा जनम-मरण को जीत लिया है।।
अरे पापतम के नाशक ने राग-द्वेष का।
निर्मूलन कर पूर्ण मूल से हनन किया है।। १७९ ।।

ॐ ह्रीं वीतरागीजिनेन्द्रदेवप्रशंसक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९८।।

जयमाला

(दोहा)

प्रतिक्रमण आलोचना एवं प्रत्याख्यान।
अधिकारों पर अब करें जयमाला व्याख्यान।। १ ।।

(रोला)

नियमसार में इन तीनों का प्रतिपादन जो।
होता है वह निश्चयनय से ही होता है।।
इसीलिये बतलाया जाता ध्यानरूप ही।
इन तीनों को नियमसार के अधिकारों में।। २ ।।

(द्रुतविलंबित)

जयति शांतरसामृतवारिधि प्रतिदिनोदयचारुहिमद्युतिः।
अतुलबोधदिवाकरदीधिति प्रहतमोहतमस्समितिर्जिनः।। १७८।।
विजितजन्मजरामृतिसंचयः प्रहतदारुणरागकदम्बकः।
अघमहातिमिरव्रजभानुमान् जयति यः परमात्मपदस्थितः।। १७९।।

भूतकाल के दोषों का परिमार्जन यद्यपि।
प्रतिक्रमण कहलाता है रे जैनागम में।।
और भावि में दोष न करना प्रत्यख्यान है।
किन्तु तीनों होते हैं बस वर्तमान में।। ३।।

भूतकाल में अबतक जो कुछ दोष हुये हैं।
उनकी क्षमा याचना करना वर्तमान में ।।
प्रतिक्रमण कहलाता है जिनवर आगम में।
प्रतिदिन करने योग्य कार्य है जिनशासन में।। ४।।

इन दोषों को भाविकाल में न करने का।
लेना है संकल्प सभी को वर्तमान में।।
प्रत्याख्यान इसे कहते हैं जैनागम में।
प्रतिदिन करने योग्य कार्य है जिनशासन में।। ५।।

वर्तमान के दोषों का पछतावा करना।
एवं उनसे बचना ही तो आलोचन है।।
यों होते हैं ये तीनों ही वर्तमान में।
निश्चय से तीनों आ जाते एक ध्यान में।। ६।।

अल्प दोष का भी जो नित प्रतिक्रमण करते।
आ जावे यदि भाव नित्य आलोचन करते।।
करते हैं संकल्प कभी भी नहीं करेंगे।
पुण्य–पाप के भावों से हम सदा बचेंगे।। ७।।

कैसे कह सकते हैं वे मन्दिर बनवावो।
और धर्मशालायें भी भरपूर बनाओ।।
बहवारंभी कार्यों का अनुमोदन भाई।
उनसे कैसे हो सकता है तुम्हीं बताओ।। ८।।

मन्दिर बनवाने में भी वह सब होता है।
जो भी होता है मकान के बनवाने में।।
सभी तरह के हिंसारंभी वर्तन होते।
सभी तरह के लेन-देन भी करने पड़ते।। ९।।

इन सबसे मुनिराजों का सम्पर्क नहीं हो।
यही श्रेष्ठ है जिनशासन के संरक्षण में।।
करें-करावें श्रावक ही इन सब कामों को।
सन्तजनों को ज्ञान-ध्यान में ही रहने दें।। १०।।

आग्रह करके उन्हें नहीं उलझावे इसमें।
उनका लाभ ज्ञान-ध्यान के अर्जन में लें।।
इसमें ही बस उनका और हमारा हित है।
आतमहित के लिये और सब हित अर्पित हैं।। ११।।

ॐ ह्रीं श्री परमार्थप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-परमालोचनाधिकारेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

प्रतिक्रमणादि नित्य कर भव से होवें पार।
जयमाला पूरी हुई है आनन्द अपार।। १२।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

५

शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त, परमसमाधि एवं परमभक्ति अधिकार पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

विगत में प्रतिक्रमण आदिक को कहा है ध्यानमय।
अब यहाँ प्रायश्चित्त को भी कह रहे हैं ध्यानमय।।
यह ध्यान प्रायश्चित्त का उत्कृष्टतम निजरूप है।
परमार्थ प्रायश्चित्त का यह एकमात्र स्वरूप है।। १ ।।

आतमा का ज्ञान ही है समाधि जिनवर कहें।
आतमा का ध्यान ही है समाधि जिनवर कहें।।
स्वयं में लवलीन होना समाधि है जिन कहें।
स्वयं में ही समा जाना समाधि है जिन कहे।। २ ।।

नियतनय से आतमा का ध्यान ही जिनभक्ति है।
जिनदेव का गुण स्तवन व्यवहारनय से भक्ति है।।
मुक्तिमग थित यतीश्वर निज आतमा में रत रहें।
परमार्थभक्ति के धनी सब सन्त नित भक्ति करें।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकाराः अत्र अवतरत-अवतरत संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकाराः अत्र तिष्ठत-तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकाराः अत्र मम सन्निहिता भवत-भवत वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(हरिगीत)

जल

जल परम उज्ज्वल शान्त शीतल तृषा की बाधा हरे।
यह परम पावन आतमा मद मोह माया परिहरे।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। १ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

ज्यों विषधरों के बीच चन्दन वृक्ष नित निर्विष रहे।
त्यों मोह मल के बीच में भी आतमा निर्मल रहे।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

वे हैं कहाँ अक्षत अरे हम जिन्हें नित अक्षत कहें।
क्षत-विक्षतों के बीच रह सब आतमा अक्षत रहें।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

ये प्रफुल्लित पुष्प अपनी गंध पर इतरा रहे।
पर गंध विरहित आतमा की होड़ कहँ कर पा रहे।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

यह अनादि की क्षुधा मिष्ठान्न कहँ हर पा रहा।
पर आतमा का ध्यान उसको मूलतः निपटा रहा।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

अरे अगणित दीप मिल ना जिसे निपटा पा रहे।
पर आत्मरवि सम्पूर्ण जग का अंधकार मिटा रहे।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यह दशांगी धूप जल ना एक कर्म जला सकी।
पर दशांगी धर्म ने लो कर्म सब निपटा दिये।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

मुक्ति फल की प्राप्ति में ये सभी फल निष्फल रहे।
पर आतमा के ध्यान से सब मुक्तिफल को पा रहे।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

हमने चढ़ाया अर्घ्य पर पाया नहीं अन्अर्घ्यपद।
पर सिद्ध ने निज ध्यान से ही पा लिया अन्अर्घ्यपद।।
भक्ती समाधि प्रायश्चित सब नियतनय से ज्ञान में।
सब समा जाते एक निज परमातमा के ध्यान में।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त अधिकार।।

सर्वप्रथम आचार्य निश्चयप्रायश्चित्त का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

जो शील संयम व्रत समिति अर करण निग्रहभाव हैं।
सतत् करने योग्य वे सब भाव ही प्रायश्चित्त हैं।। ११३ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रायश्चित्तस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।२९८।।

टीकाकार मुनिराज एक कलश लिखते हैं, जिसमें कहते हैं कि मुनि को आत्मा के सिवाय अन्य चिन्ता पापोत्पादक है –

(हरिगीत)

मुनिजनों के चित्त में जो स्वात्मा का निरन्तर।
हो रहा है चिन्तवन बस यही प्रायश्चित्त है।।

(गाथा)

वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो।
सो हवदि पायछित्तं अणवरयं चेव कायव्वो।। ११३ ।।

वे सन्त पावें मुक्ति पर जो अन्य-चिन्तामूढ हों।
कामार्त्त वे मुनिराज बाँधें पाप क्या आश्चर्य है ?।। १८० ।।

ॐ ह्रीं मुनये आत्मचिन्ताहितकारिणीति-प्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।२९९।।

अब पुनः इस गाथा में निश्चय प्रायश्चित्त का स्वरूप कहते हैं -

(हरिगीत)

प्रायश्चित्त क्रोधादि के क्षय आदि की सद्भावना।
अर निजगुणों का चिन्तवन यह नियतनय का है कथन।। ११४ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रायश्चित्त-स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।३००।।

अब इस कलश में कहते हैं कि आत्मा का सम्यक् ज्ञान-श्रद्धान-ध्यान ही निश्चय प्रायश्चित्त है -

(रोला)

कामक्रोध आदिक जितने भी अन्य भाव हैं।
उनके क्षय की अथवा अपने ज्ञानभाव की।।
प्रबल भावना ही है प्रायश्चित्त कहा है।
ज्ञानप्रवाद पूर्व के ज्ञायक संतगणों ने।। १८१ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रायश्चित्त-स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।३०१।।

(मंदाक्रांता)

प्रायश्चित्तं भवति सततं स्वात्मचिंता मुनीनां
मुक्तिं यान्ति स्वसुखरतयस्तेन निर्धूतपापाः।
अन्या चिंता यदि च यमिनां ते विमूढाः स्मरार्त्ताः
पापाः पापं विदधति मुहुः किं पुनश्चित्रमेतत् ।। १८० ।।

(गाथा)

कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए णिग्गहणं।
पायच्छित्तं भणिदं णियगुणचिंता य णिच्छयदो।। ११४।।

(शालिनी)

प्रायश्चित्तमुक्तमुच्चैर्मुनीनां
कामक्रोधाद्यान्यभावक्षये च।
किं च स्वस्य ज्ञानसंभावना वा
सन्तो जानन्त्येदात्मप्रवादे ।। १८१ ।।

अब यहाँ कहते हैं कि क्रोधादि कैसे जीते जाते हैं –

(हरिगीत)

वे कषायों को जीतते उत्तमक्षमा से क्रोध को।
मान माया लोभ जीते मृदु सरल संतोष से।। ११५ ।।

ॐ ह्रीं क्रोधादिकषायजयोपाय-स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं.. ।।३०२।।

यहाँ टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव आत्मानुशासन के चार कलश उद्धृत करते हैं; जिनमें क्रोध, मान, माया एवं लोभ कषाय से उत्पन्न होने वाली हानि को प्रदर्शित किया गया है –

(रोला)

अरे हृदय में कामभाव के होने पर भी।
क्रोधित होकर किसी पुरुष को काम समझकर।।
जला दिया हो महादेव ने फिर भी विह्वल।
क्रोधभाव से नहीं हुई है किसकी हानि?।। ६०।।

(वीर)

अरे हस्तगत चक्ररत्न को बाहुबली ने त्याग दिया।
यदि न होता मान उन्हें तो मुक्तिरमा तत्क्षण वरते।।
किन्तु मान के कारण ही वे एक बरस तक खड़े रहे।
इससे होता सिद्ध तनिक सा मान अपरिमित दुख देता।। ६१ ।।

(गाथा)

कोहं खमया माणं समद्दवेणज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं जयदि खु ए चहुविहकसाए।। ११५।।

(वसंततिलका)

चित्तस्थमप्यनवबुद्ध्य हरेण जाड्यात् क्रुद्ध्वा बहिः किमपि दग्धमनंगबुद्ध्या।
घोरामवाप स हि तेन कृतामवस्थां क्रोधोदयाद्भवति कस्य न कार्यहानिः।। ६०।।[1]

चक्रं विहाय निजदक्षिणबाहुसंस्थं यत्प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुच्येत्।
क्लेशं तमाप किल बाहुबली चिराय मानो मनागपि हतिं महतीं करोति।। ६१ ।।[2]

१. गुणभद्रस्वामी : आत्मानुशासन, छन्द-२१६ २. वही, छन्द-२२७

अरे देखना सहज नहीं क्रोधादि भयंकर सांपों को।
क्योंकि वे सब छिपे हुए हैं मायारूपी गर्तों में।।
मिथ्यातम है घोर भयंकर डरते रहना ही समुचित।
यह सब माया की महिमा है बचके रहना ही समुचित।। ६२ ।।

वनचर भय से भाग रही पर उलझी पूँछ लताओं में।
दैवयोग से चमर गाय वह मुग्ध पूँछ के बालों में।।
खड़ी रही वह वहीं मार डाला वनचर ने उसे वहीं।
इसप्रकार की विकट विपत्ति मिलती सभी लोभियों को।। ६३ ।।

ॐ ह्रीं क्रोधादिकषायजन्यहानि-स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३०३।।

अब इस कलश में मुनिराज चारों कषायों को कैसे जीतें - इस बात की प्रेरणा देते हैं -

(सोरठा)

क्षमाभाव से क्रोध, मान मार्दव भाव से।
जीतो माया-लोभ आर्जव एवं शौच से।। १८२ ।।

ॐ ह्रीं क्रोधादिकषायजयोपाय-स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३०४।।

(अनुष्टुभ्)

भेयं मायामहागर्तान्मिथ्याघनतमोमयात्।
यस्मिन् लीना न लक्ष्यन्ते क्रोधादिविषमाहयः।। ६२ ।।[१]

(हरिणी)

वनचरभयाद्धावन् दैवाल्लताकुलवालधिः
किल जडतया लोलो वालव्रजेऽविचलं स्थितः।
बत स चमरस्तेन प्राणैरपि प्रवियोजितः
परिणततृषां प्रायेणैवंविधा हि विपत्तयः।। ६३ ।।[२]

(आर्या)

क्षमया क्रोधकषायं मानकषायं च मार्दवेनैव।
मायामार्जवलाभाल्लोभकषायं च शौचतो जयतु।। १८२।।

---

१. गुणभद्रस्वामी : आत्मानुशासन, छन्द-२११ २. वही, छन्द-२२३

अब यहाँ कहते हैं कि शुद्ध ज्ञान को स्वीकार करनेवाले को ही प्रायश्चित्त होता है –

(हरिगीत)

उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्त जो।
वह चित्त जो धारण करे वह संत ही प्रायश्चित्त है।। ११६ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धज्ञानस्वीकर्त्रे प्रायश्चित्तप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३०५।।

अब इस कलश में मुनिराज को उनके गुणों की प्राप्ति हेतु नमस्कार किया जा रहा है –

(हरिगीत)

शुद्धात्मा के ज्ञान की संभावना जिस संत में।
आत्मरत उस सन्त को तो नित्य प्रायश्चित्त है।।
धो दिये सब पाप अर निज में रमे जो संत नित।
मैं नमूँ उनको उन गुणों को प्राप्त करने के लिए।। १८३ ।।

ॐ ह्रीं मुनिगुणप्राप्तये नमस्क्रियते इतिप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३०६।।

अब यहाँ कहते हैं कि मुनियों का तपश्चरण ही प्रायश्चित्त है –

(हरिगीत)

कर्मक्षय का हेतु जो है ऋषिगणों का तपचरण।
वह पूर्ण प्रायश्चित्त है इससे अधिक हम क्या कहें।। ११७ ।।

ॐ ह्रीं मुनि-तपश्चरणमेव प्रायश्चित्तमितिप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३०७।।

(गाथा)

उक्किट्ठो जो बोहो णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।
जो धरइ मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स।। ११६ ।।

(शालिनी)

यः शुद्धात्मज्ञानसंभावनात्मा
प्रायश्चित्तमत्र चास्त्येव तस्य।
निर्धूतांहःसंहतिं तं मुनीन्द्रं
वन्दे नित्यं तद्गुणप्राप्तयेऽहम्।। १८३ ।।

(गाथा)

किं बहुणा भणिएण दु वरतवचरणं महेसिणं सव्वं।
पायच्छित्तं जाणह अणेयकम्माण खयहेऊ।। ११७ ।।

अब इस कलश में सहज तत्त्व भगवान आत्मा को पुण्य-पाप के क्षय का कारण कहते हैं -

(दोहा)

अनशनादि तप चरणमय और ज्ञान से गम्य।
अघक्षयकारण तत्त्वनिज सहजशुद्धचैतन्य।। १८४ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः पुण्यपापक्षयकारकत्वं प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३०८।।

अब इस कलश में प्रायश्चित्त की महिमा बताते हैं -

(रोला)

अरे प्रायश्चित्त उत्तम पुरुषों को जो होता।
धर्मध्यानमय शुक्लध्यानमय चिन्तन है वह।।
कर्मान्धकार का नाशक यह सद्बोध तेज है।
निर्विकार अपनी महिमा में लीन सदा है।। १८५ ।।

ॐ ह्रीं प्रायश्चित्त-महिमाप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.।।३०९।।

अब इस कलश में कहते हैं कि निश्चयप्राश्चित्त आत्मोपलब्धिरूप है और आत्मोपलब्धि आत्मा के श्रद्धान, ज्ञान और अनुभवरूप है -

(हरिगीत)

आत्म की उपलब्धि होती आतमा के ज्ञान से।
मुनिजनों के करणरूपी घोरतम को नाशकर।।

(द्रुतविलंबित)

अनशनादितपश्चरणात्मकं सहजशुद्धचिदात्मविदामिदम्।
सहजबोधकलापरिगोचरं सहजतत्त्वमघक्षयकारणम्।। १८४।।

(शालिनी)

प्रायश्चित्तं ह्युत्तमानामिदं स्यात्
स्वद्रव्येऽस्मिन् चिन्तनं धर्मशुक्लम्।
कर्मव्रातध्वान्तसद्बोधतेजो-
लीनं स्वस्मिन्निर्विकारे महिम्नि।। १८५।।

कर्मवन उद्भव भवानल नाश करने के लिए।
वह ज्ञानज्योति सतत् शमजलधार को है छोड़ती।। १८६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मोपलब्धि-स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।३१०।।

अब इस कलश में कहते हैं कि संयमरूपी रत्नमाला तत्त्वज्ञानियों के कंठ का आभूषण है – (भुजंगप्रयात)

जिनशास्त्ररूपी अमृत उदधि से।
बाहर हुई संयम रत्नमाला।।
मुक्तिवधू वल्लभ तत्त्वज्ञानी।
के कण्ठ की वह शोभा बनी है।। १८७ ।।

ॐ ह्रीं संयम-महत्ता-प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३११।।

अब इस कलश में कहते हैं कि परमात्मतत्त्व ही श्रद्धेय, ज्ञेय एवं ध्येय है – (भुजंगप्रयात)

भवरूप पादप जड़ का विनाशक।
मुनीराज के चित कमल में रहे नित।।
अर मुक्तिकांतारतिजन्य सुख का।
मूल जो आतम उसको नमन हो।। १८८ ।।

ॐ ह्रीं संयम-महत्ता-प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३१२।।

(मंदाक्रांता)

आत्मज्ञानाद्भवति यमिनामात्मलब्धिः क्रमेण
ज्ञानज्योतिर्निहतकरणग्रामघोरान्धकारा।
कर्मारण्योद्भवदवशिखाजालकानामजस्रं
प्रध्वंसेऽस्मिन् शमजलमयीमाशु धारां वमन्ती।। १८६ ।।

(उपजाति)

अध्यात्मशास्त्रामृतवारिराशे-
र्मयोद्धृता संयमरत्नमाला।
बभूव या तत्त्वविदां सुकण्ठे
सालंकृतिर्मुक्तिवधूधवानाम्।। १८७ ।।

(उपेन्द्रवज्रा)

नमामि नित्यं परमात्मतत्त्वं
मुनीन्द्रचित्ताम्बुजगर्भवासम्।
विमुक्तिकांतारतसौख्यमूलं
विनष्टसंसारद्रुममूलमेतत् ।। १८८।।

अब इस गाथा में भी कहते हैं कि मुनियों का तपश्चरण ही प्रायश्चित्त है –

(हरिगीत)

अनंत भव में उपार्जित सब कर्मराशि शुभाशुभ।
भसम हो तपचरण से अतएव तप प्रायश्चित्त है।। ११८ ।।

ॐ ह्रीं मुनेः तप एवं प्रायश्चित्तमिति प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१३।।

अब इस कलश में कहते हैं कि चिदानन्दरूपी तप ही निश्चयप्रायश्चित्त है –

(भुजंगप्रयात)

रे रे अनादि संसार से जो
समृद्ध कर्मों का वन भयंकर।
उसे भस्म करने में है सबल जो
अर मोक्षलक्ष्मी की भेंट है जो।।
शमसुखमयी चैतन्य अमृत
आनन्दधारा से जो लबालब।
ऐसा जो तप है उसे संतगण सब
प्रायश्चित कहते हैं निरन्तर।। १८९ ।।

ॐ ह्रीं चिदानन्दरूपतप एव प्रायश्चित्तमिति प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१४।।

(गाथा)

णंताणंतभवेण समज्जियसुहअसुहकम्मसंदोहो।
तवचरणेण विणस्सदि पायच्छित्तं तवं तम्हा।। ११८।।

(मंदाक्रांता)

प्रायश्चित्तं न पुनरपरं कर्म कर्मक्षयार्थं
प्राहुः सन्तस्तप इति चिदानंदपीयूषपूर्णम्।
आसंसारादुपचितमहत्कर्मकान्तारवह्नि
ज्वालाजालं शमसुखमयं प्राभृतं मोक्षलक्ष्म्याः।। १८९ ।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि ध्यानरूप तप ही प्रायश्चित्त है –

(हरिगीत)

निज आतमा के ध्यान से सब भाव के परिहार की।
इस जीव में सामर्थ्य है निजध्यान ही सर्वस्व है।। ११९ ।।

ॐ ह्रीं ध्यानरूपतप एव प्रायश्चित्तमिति प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१३।।

अब इस कलश में कहते हैं कि शुद्धात्मा का आराधक शीघ्र ही जीवन्मुक्त होता है – (रोला)

परमकला युत शुद्ध एक आनन्दमूर्ति है।
तमनाशक जो नित्यज्योति आद्यन्त शून्य है।।
उस आतम को जो भविजन अविचल मनवाला।
ध्यावे तो वह शीघ्र मोक्ष पदवी को पाता।। १९० ।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्माराधकस्य जीवन्मुक्तत्वं प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१४।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि आत्मा का ध्यान करनेवाले के नियम से नियम होता है – (हरिगीत)

शुभ–अशुभ रचना वचन वा रागादिभाव निवारि के।
जो करें आतम ध्यान नर उनके नियम से नियम है।। १२० ।।

ॐ ह्रीं आत्मध्यातुः नियम इतिप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१५।।

(गाथा)

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि कादुं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं।। ११९ ।।

(मंदाक्रांता)

यः शुद्धात्मन्यविचलमनाः शुद्धमात्मानमेकं
नित्यज्योतिःप्रतिहततमःपुंजमाद्यन्तशून्यम् ।
ध्यात्वाजस्रं परमकलया सार्धमानन्दमूर्तिं
जीवन्मुक्तो भवति तरसा सोऽयमाचारराशिः ।। १९० ।।

(गाथा)

सुहअसुहवयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा।। १२० ।।

अब इस कलश में कहते हैं कि आत्माराधक जीव के नियम से ध्यान होता है –

(हरिगीत)

जो भव्य भावें सहज सम्यक् भाव से परमात्मा।
ज्ञानात्मक उस परम संयमवंत को आनन्दमय।।
शिवसुन्दरी के सुक्ख का कारण परमपरमातमा।
के लक्ष्य से सद्भावमय शुधनियम होता नियम से।। १९१ ।।

ॐ ह्रीं आत्माराधकस्य नियमेन ध्यानत्वमिति प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१६।।

अब तीन कलशों में नयविलास से रहित, परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा को नमन, वन्दन करते हैं तथा उसी का ध्यान, स्तवन करते हैं –

(हरिगीत)

जो अनवरत अद्वैत चेतन निर्विकारी है सदा।
उस आत्म को नय की तरंगें स्फुरित होती नहीं।।
विकल्पों से पार एक अभेद जो शुद्धातमा।
हो नमन, वंदन, स्तवन अर भावना हो भव्यतम।। १९२ ।।

यह ध्यान है यह ध्येय है और यह ध्याता अरे।
यह ध्यान का फल इसतरह के विकल्पों के जाल से।।
जो मुक्त है श्रद्धेय है अर ध्येय एवं ध्यान है।
उस परम आतमतत्त्व को मम नमन बारंबार है।। १९३ ।।

(हरिणी)

वचनरचनां त्यक्त्वा भव्यः शुभाशुभलक्षणां
सहजपरमात्मानं नित्यं सुभावयति स्फुटम्।
परमयमिनस्तस्य ज्ञानात्मनो नियमादयं
भवति नियमः शुद्धो मुक्त्यंगनासुखकारणम्।। १९१।।

(मालिनी)

अनवरतमखंडाद्वैतचिन्निर्विकारे
निखिलनयविलासो न स्फुरत्येव किंचित्।
अपगत इह यस्मिन् भेदवादस्समस्तः
तमहमभिनमामि स्तौमि संभावयामि।। १९२ ।।

(अनुष्टुभ्)

इदं ध्यानमिदं ध्येयमयं ध्याता फलं च तत्।
एभिर्विकल्पजालैर्यन्निर्मुक्तं तन्नमाम्यहम्।। १९३ ।।

त्रिविध योगों में परायण योगियों को कदाचित्।
हो भेद की उलझन अरे बहु विकल्पों का जाल हो।।
उन योगियों की मुक्ति होगी या नहीं कैसे कहें।
कौन जाने क्या कहे ह्न यह समझ में आता नहीं।। १९४ ।।

ॐ ह्रीं नयविलासरहित-आत्मनः वन्द्यत्वं ध्येयत्वं प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१७।।

अब इस गाथा में उपसंहार के रूप में पुनः निश्चय प्रायश्चित्त का स्वरूप स्पष्ट करते हैं – (हरिगीत)

जो जीव स्थिरभाव तज कर तनादि परद्रव्य में।
करे आतमध्यान कायोत्सर्ग होता है उसे।। १२१ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रायश्चित्त-स्वरूपप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१८।।

अब इस कलश में कहते हैं कि आत्मलीन संयमियों के मन-वचन-काय सम्बन्धी विकल्प नहीं होते –

(हरिगीत)

रे सभी कारज कायकृत मन के विकल्प अनल्प जो।
अर जल्पवाणी के सभी को छोड़ने के हेतु से।।
निज आत्मा के ध्यान से जो स्वात्मनिष्ठापरायण।
हे भव्यजन उन संयमी के सतत् कायोत्सर्ग है।। १९५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मलीनसंयमिनां निर्विकल्पत्वं प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३१९।।

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्यार्हते मते।। १९४।।

(गाथा)

कायाई परदव्वे थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।
तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्वियप्पेण।। १२१ ।।

(मंदाक्रांता)

कायोत्सर्गो भवति सततं निश्चयात्संयतानां
कायोद्भूतप्रबलतरतत्कर्ममुक्तेः सकाशात्।
वाचां जल्पप्रकरविरतेर्मानसानां निवृत्तेः
स्वात्मध्यानादपि च नियतं स्वात्मनिष्ठापराणाम्।। १९५।।

अब इन दो कलशों में आत्माराधना का संकल्प व्यक्त किया गया है –

(हरिगीत)

मोहतम से मुक्त आतमतेज से अभिषिक्त है।
दृष्टि से परिपूर्ण सुखमय सहज आतमतत्त्व है।।
संसार में परिताप की परिकल्पना से मुक्त है।
अरे ज्योतिर्मान निज परमातमा जयवंत है।। १९६।।

संसारसुख अति अल्प केवल कल्पना में रम्य है।
मैं छोड़ता हूँ उसे सम्यक् रीति आतमशक्ति से।।
मैं चेतता हूँ सर्वदा चैतन्य के सद्ज्ञान में।
स्फुरित हूँ मैं परमसुखमय आतमा के ध्यान में।। १९७ ।।

ॐ ह्रीं आत्माराधनासंकल्प-प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३२०।।

अब इन दो कलशों में आत्मा को नहीं जानने से हुई दुर्दशा का वर्णन किया गया है –

(हरिगीत)

समाधि की है विषय जो मेरे हृदय में स्फुरित।
स्वातम गुणों की संपदा को एक क्षण जाना नहीं।।
त्रैलोक्य वैभव विनाशक दुष्कर्म की गुणशक्ति के।
निमित्त से रे हाय मैं संसार में मारा गया।। १९८ ।।

(मालिनी)

जयति सहजतेजःपुंजनिर्मग्नभास्वत्-
सहजपरमतत्त्वं मुक्तमोहान्धकारम्।
सहजपरमदृष्ट्या निष्ठितन्मोघजातं।
भवभवपरितापैः कल्पनाभिश्च मुक्तम्।। १९६ ।।
भवभवसुखमल्पं कल्पनामात्ररम्यं
तदखिलमपि नित्यं संत्यजाम्यात्मशक्त्या।
सहजपरमसौख्यं चिच्चमत्कारमात्रं
स्फुटितनिजविलासं सर्वदा चेतयेहम्।। १९७।।

(पृथ्वी)

निजात्मगुणसंपदं मम हृदि स्फुरन्तीमिमां
समाधिविषयामहो क्षणमहं न जाने पुरा।
जगत्त्रितयवैभवप्रलयहेतुदुःकर्मणां
प्रभुत्वगुणशक्तितः खलु हतोस्मि हा संसृतौ।। १९८।।

(दोहा)

सांसारिक विषवृक्षफल दुख के कारण जान।
आतम से उत्पन्न सुख भोगूँ मैं भगवान।। १९९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानाभावे दुरवस्थायाः प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३२१।।

।। परम समाधि अधिकार ।।

अब इस गाथा में परम समाधिधारक का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

वचन उच्चारण क्रिया तज वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजातम जो समाधि परम होती है उसे।। १२२ ।।

ॐ ह्रीं परमसमाधिधारक-स्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३२२।।

अब इस कलश में आत्मा को नहीं जानने से हुई दुर्दशा का वर्णन किया गया है – (हरिगीत)

समाधि बल से मुमुक्षु उत्तमजनों के हृदय में।
स्फुरित समताभावमय निज आतमा की संपदा।।
जबतक न अनुभव करें हम तबतक हमारे योग्य जो।
निज अनुभवन का कार्य है वह हम नहीं हैं कर रहे।। २०० ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानाभावे दुरवस्थायाः प्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३२३।।

(आर्या)

भवसंभवविषभूरुहफलमखिलं दुःखकारणं बुद्ध्वा।
आत्मनि चैतन्यात्मनि संजातविशुद्धसौख्यमनुभुंजे।। १९९ ।।

(गाथा)

वयणोच्चारणकिरियं परिचत्ता वीयरायभावेण।
जो झायदि अप्पाणं परमसमाही हवे तस्स।। १२२ ।।

(वंशस्थ)

समाधिना केनचिदुत्तमात्मनां
हृदि स्फुरन्तीं समतानुयायिनीम्।
यावन्न विद्मः सहजात्मसंपदं
न मादृशां या विषया विदामहि।। २०० ।।

अब परम समाधि किसके होती है – यह बताते हैं –

(हरिगीत)

संयम नियम तप धरम एवं शुक्ल सम्यक् ध्यान से।
ध्यावे निजातम जो समाधि परम होती है उसे।। १२३ ।।

ॐ ह्रीं समाधिनिरत-आत्मनः परिणतिनिरूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३२४।।

अब इस कलश में समाधिरत आत्मा को नमन करते हुए लिखते हैं –

(हरिगीत)

निर्विकल्पक समाधि में नित रहें जो आतमा।
उस निर्विकल्पक आतमा को नमन करता हूँ सदा।। २०१ ।।

ॐ ह्रीं परमसमाधिधारक-महिमाप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३२५।।

अब कहते हैं कि समतारहित श्रमण के अन्य सभी बाह्याचार निरर्थक हैं –

(हरिगीत)

वनवास कायक्लेशमय उपवास अध्ययन मौन से।
अरे समताभाव बिन क्या लाभ श्रमणाभास को।। १२४ ।।

ॐ ह्रीं समतारहितश्रमणस्य बाह्याचारनिरर्थकत्वप्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३२६।।

(गाथा)

संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं परमसमाही हवे तस्स।। १२३ ।।

(अनुष्टुभ्)

निर्विकल्पे समाधौ यो नित्यं तिष्ठति चिन्मये।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमात्मानं तं नमाम्यहम्।। २०१ ।।

(गाथा)

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स।। १२४ ।।

अब अमृताशीति से उद्धृत इस कलश में अब तक से भिन्न मार्ग के अन्वेषण की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

विपिन शून्य प्रदेश में गहरी गुफा के वास से।
इन्द्रियों के रोध अथवा तीर्थ के आवास से।।
पठन–पाठन होम से जपजाप अथवा ध्यान से।
है नहीं सिद्धि खोजलो पथ अन्य गुरु के योग से।। ६४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्मार्ग–अन्वेषणप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३२७।।

अब इस कलश में निज तत्त्व का अवलम्बन लेने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

अनशनादि तपस्या समता रहित मुनिजनों की।
निष्फल कही है इसलिए गंभीरता से सोचकर।।
और समताभाव का मंदिर निजातमराम जो।
उस ही निराकुल तत्त्व को भज लो निराकुलभाव से।। २०२ ।।

ॐ ह्रीं निजात्मतत्त्वावलम्बनप्रेरक–श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३२८।।

अब सामायिक किनके होती है, यह कहते हैं –

(हरिगीत)

जो विरत हैं सावद्य से अर तीन गुप्ति सहित हैं।
उन जितेन्द्रिय संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १२५ ।।

ॐ ह्रीं सामायिकस्वामिप्रतिपादक–श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३२९।।

(मालिनी)

गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश–
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः
मृगय तदपरं त्वं भोः प्रकारं गुरुभ्यः।। ६४ ।।[1]

(द्रुतविलंबित)

अनशनादितपश्चरणैः फलं समतया रहितस्य यते र्न हि।
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं भज मुने समताकुलमंदिरम्।। २०२ ।।

(गाथा)

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १२५ ।।

---

१. योगीन्द्रदेव : अमृताशीति, छन्द ५९

अब इस कलश में कहते हैं कि सावद्य रहित मुनि सदैव सामायिक में रहते हैं –

(हरिगीत)

संसारभय के हेतु जो सावद्य उनको छोड़कर।
मन–वचन–तन की विकृति से पूर्णत: मुख मोड़कर।।
अरे अन्तर्शुद्धि से सद्ज्ञानमय शुद्धातमा।
को जानकर समभावमयचारित्र को धारण करें।। २०३ ।।

ॐ ह्रीं सावद्यरहितमुनिः सामायिकरतः इति प्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३०।।

अब माध्यस्थभाव में आरूढ़ मुमुक्षु का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

त्रस और थावर के प्रति अर सर्वजीवों के प्रति।
समभाव धारक संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १२६ ।।

ॐ ह्रीं माध्यस्थभावारूढ–मुमुक्षोः स्वरूपप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३१।।

अब इस कलश में मुनिराज को नमस्कार करते हैं –

(हरिगीत)

जिन मुनिवरों का चित्त नित त्रस–थावरों के त्रास से।
मुक्त हो सम्पूर्णत: अन्तिम दशा को प्राप्त हो।।

(मंदाक्रान्ता)

इत्थं मुक्त्वा भवभयकरं सर्वसावद्यराशिं
नीत्वा नाशं विकृतिमनिशं कायवाङ्मानसानाम्।
अन्त:शुद्ध्या परमकलया साकमात्मानमेकं
बुद्ध्वा जन्तु स्थिरशममयं शुद्धशीलं प्रयाति।। २०३ ।।

(गाथा)

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १२६ ।।

उन मुनिवरों को नमन करता भावना भाता सदा।
स्तवन करता हूँ निरन्तर मुक्ति पाने के लिए।। २०४ ।।

ॐ ह्रीं मुनिनमस्कारप्ररूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३३२।।

अब पाँच कलशों में द्वैताद्वैत तथा समस्त प्रकार के विकल्पजाल से मुक्त आत्मा को प्राप्त करने की भावना भायी गयी है –

(दोहा)

कोई वर्ते द्वैत में अर कोई अद्वैत।
द्वैताद्वैत विमुक्तमग हम वर्तें समवेत।। २०५ ।।

कोई चाहे द्वैत को अर कोई अद्वैत।
द्वैताद्वैत विमुक्त जिय मैं वंदूँ समवेत।। २०६ ।।

(सोरठा)

थिर रह सुख के हेतु अज अविनाशी आत्म में।
भाऊँ बारंबार निज को निज से निरन्तर।। २०७ ।।

(हरिगीत)

संसार के जो हेतु हैं इन विकल्पों के जाल से।
क्या लाभ है हम जा रहे नयविकल्पों के पार अब ।।

(मालिनी)

त्रसहतिपरिमुक्तं स्थावराणां वधैर्वा
परमजिनमुनीनां चित्तमुच्चैरजस्रम्।
अपि चरमगतं यन्निर्मलं कर्ममुक्त्यै
तदहमभिनमामि स्तौमि संभावयामि।। २०४।।

(अनुष्टुभ्)

केचिदद्वैतमार्गस्थाः केचिद् द्वैतपथे स्थिताः।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमार्गे वर्तामहे वयम्।। २०५।।
कांक्षंत्यद्वैतमन्येपि द्वैतं कांक्षन्ति चापरे।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमात्मानमभिनौम्यहम् ।। २०६।।
अहमात्मा सुखाकांक्षी स्वात्मानमजमच्युतम्।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः।। २०७।।

नयविकल्पातीत सुखमय अगम आतमराम को।
वन्दन करूँ कर जोड़ भवभय नाश करने के लिए।। २०८ ।।

अच्छे बुरे निजकार्य से सुख-दुःख हों संसार में।
पर आतमा में हैं नहीं ये शुभाशुभ परिणाम सब।।
क्योंकि आतमराम तो इनसे सदा व्यतिरिक्त है।
स्तुति करूँ मैं उसी भव से भिन्न आतमराम की।। २०९ ।।

ॐ ह्रीं विकल्पमुक्तात्मतत्त्वप्राप्तिभावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३३।।

अब दो कलशों में आत्मा की महिमा गायी गयी है –

(हरिगीत)

प्रगट अपने तेज से अति प्रबल तिमिर समूह को।
दूर कर क्षणमात्र में ही पापसेना की ध्वजा।।
हरण कर ली जिस महाशय प्रबल आतमराम ने।
जयवंत है वह जगत में चित्चमत्कारी आतमा।। २१० ।।

(शिखरिणी)

विकल्पोपन्यासैरलमलममीभिर्भवकरैः
अखण्डानन्दात्मा निखिलनयराशेरविषयः।
अयं द्वैताद्वैतो न भवति ततः कश्चिदचिरात्
तमेकं वन्देऽहं भवभयविनाशाय सततम्।। २०८ ।।
सुखं दुःखं योनौ सुकृतदुरितव्रातजनितं
शुभाभावो भूयोऽशुभपरिणतिर्वा न च न च।
यदेकस्याप्युच्चैर्भवपरिचयो बाढमिह नो
य एवं संन्यस्तो भवगुणगणैः स्तौमि तमहम्।। २०९ ।।

(मालिनी)

इदमिहमघसेनावैजयन्तीं हरेत्तां
स्फुटितसहजतेजःपुंजदूरीकृतांहः।
प्रबलतरतमस्तोमं सदा शुद्धशुद्धं
जयति जगति नित्यं चिच्चमत्कारमात्रम्।। २१० ।।

गणधरों के मनकमल थित प्रगट शुध एकान्तत:।
भवकारणों से मुक्त चित् सामान्य में है रत सदा।।
सद्दृष्टियों को सदागोचर आत्ममहिमालीन जो।
जयवंत है भव अन्तकारक अनघ आतमराम वह।। २११ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः महिमाप्ररूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३३४।।

अब यहाँ बताते हैं कि एकमात्र आत्मा ही उपादेय है –

(हरिगीत)

आतमा है पास जिनके नियम-संयम-तप विषैं।
उन आत्मदर्शी संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १२७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः उपादेयत्वप्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३३५।।

अब इस कलश में कहते हैं कि परम मुनियों के एक आत्मा ही ऊर्ध्व रहता है – (हरिगीत)

शुद्ध सम्यग्दृष्टिजन जाने कि संयमवंत के।
तप-नियम-संयम-चरित में यदि आतमा ही मुख्य है।।
तो सहज समताभाव निश्चित जानिये हे भव्यजन।
भावितीर्थंकर श्रमण को भवभयों से मुक्त जो।। २१२ ।।

ॐ ह्रीं मुनीनामात्मनः ऊर्ध्वत्वप्ररूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३६।।

(पृथ्वी)

जयत्यनघमात्मतत्त्वमिदमस्तसंसारकं
महामुनिगणाधिनाथहृदयारविन्दस्थितम् ।
विमुक्तभवकारणं स्फुटितशुद्धमेकान्तत:
सदा निजमहिम्नि लीनमपि सद्दृशां गोचरम् ।। २११ ।।

(गाथा)

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १२७ ।।

(मंदाक्रान्ता)

आत्मा नित्यं तपसि नियमे संयमे सच्चरित्रे
तिष्टत्युच्चै: परमयमिन: शुद्धदृष्टेर्मनश्चेत् ।
तस्मिन् बाढं भवभयहरे भावितीर्थाधिनाथे
साक्षादेषा सहजसमता प्रास्तरागाभिरामे ।। २१२ ।।

अब स्थायी सामायिक किसके होती है, यह बताते हैं –

(हरिगीत)

राग एवं द्वेष जिसका चित्त विकृत न करें।
उन वीतरागी संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १२८ ।।

ॐ ह्रीं स्थायीसामायिक-स्वामिप्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३७।।

अब इस कलश में कहते हैं कि आत्मतत्त्व में विधि-निषेध नहीं अर्थात् वह स्वभाव से विकल्पातीत है –

(रोला)

किया पापतम नाश ज्ञानज्योति से जिसने।
परमसुखामृतपूर आतमा निकट जहाँ है।।
राग-द्वेष न समर्थ उसे विकृत करने में।
उस समरसमय आतम में है विधि-निषेध क्या।। २१३ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः स्वरूपप्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३३८।।

अब यहाँ कहते हैं कि जो आर्त्त और रौद्रध्यान से रहित है, उसे सदा ही सामायिक है – (हरिगीत)

आर्त एवं रौद्र से जो सन्त नित वर्जित रहें।
उन आत्मध्यानी संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १२९ ।।

ॐ ह्रीं आर्त्तरौद्रध्यानरहितस्य सामायिकत्वमिति प्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३३९।।

(गाथा)

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १२८ ।।

(मंदाक्रान्ता)

रागद्वेषौ विकृतिमिह तौ नैव कर्तुं समर्थौ
ज्ञानज्योतिःप्रहतदुरितानीकघोरान्धकारे।
आरातीये सहजपरमानन्दपीयूषपूरे
तस्मिन्नित्ये समरसमये को विधिः को निषेधः।। २१३।।

(गाथा)

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १२९ ।।

अब इस कलश में मुनिराज की सामायिक के विषय में कथन करते हैं –

(सोरठा)

जो मुनि छोड़े नित्य आर्त्त–रौद्र ये ध्यान दो।
सामायिकव्रत नित्य उनको जिनशासन कथित।। २१४ ।।

ॐ ह्रीं सामायिकस्वरूपप्ररूपक–श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३४०।।

अब यहाँ कहते हैं कि पुण्य–पापरूप विकारीभावों को छोड़नेवाले को सदा सामायिक है – (हरिगीत)

जो पुण्य एवं पाप भावों के निषेधक हैं सदा।
उन वीतरागी संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १३० ।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापपरिहर्तुः सामायिकमिति प्रतिपादक–श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४१।।

अब इस कलश में कहते हैं कि पुण्य–पापादि भावों को छोड़ कर आत्मा में रमने वाले जीव सिद्धदशा को पाते हैं –

(हरिगीत)

संसार के जो मूल ऐसे पुण्य एवं पाप को।
छोड़ नित्यानन्दमय चैतन्य सहजस्वभाव को।।
प्राप्त कर जो रमण करते आत्मा में निरंतर।
अरे त्रिभुवनपूज्य वे जिनदेवपद को प्राप्त हों।। २१५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मरतिफलप्ररूपक–श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३४२।।

(आर्या)

इति जिनशासनसिद्धं सामायिकव्रतमणुव्रतं भवति।
यस्त्यजति मुनिर्नित्यं ध्यानद्वयमार्तरौद्राख्यम्।। २१४ ।।

(गाथा)

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १३० ।।

(मंदाक्रान्ता)

त्यक्त्वा सर्वं सुकृतदुरितं संसृतेर्मूलभूतं
नित्यानंदं व्रजति सहजं शुद्धचैतन्यरूपम्।
तस्मिन् सद्दृग् विहरति सदा शुद्धजीवास्तिकाये
पश्चादुच्चैः त्रिभुवनजनैरर्चितः सन् जिनः स्यात्।। २१५ ।।

अब इस कलश में स्वतःसिद्ध ज्ञान की महिमा बताई जा रही है –

(हरिगीत)

पुनपापरूपी गहनवन दाहक भयंकर अग्नि जो।
अर मोहतम नाशक प्रबल अति तेज मुक्तीमूल जो।।
निरुपाधि सुख आनन्ददा भवध्वंस करने में निपुण।
स्वयंभू जो ज्ञान उसको नित्य करता मैं नमन।। २१६ ।।

ॐ ह्रीं स्वतःसिद्ध-ज्ञानमहिमाप्ररूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४३।।

अब इस कलश में कहते हैं कि सच्चा सुख प्राप्त कर यह जीव अनंतकाल तक उसे भोगता है –

(हरिगीत)

आकुलित होकर जी रहा जिय अघों के समुदाय से।
भववधू का पति बनकर काम सुख अभिलाष से।।
भव्यत्व द्वारा मुक्ति सुख वह प्राप्त करता है कभी।
अनूपम सिद्धत्वसुख से फिर चलित होता नहीं।। २१७ ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्सुखस्वरूपप्ररूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४४।।

अब आगामी दो गाथाओं में नोकषायों को छोड़नेवाले जीव सदा सामायिक में रहते हैं – यह बताते हैं –

(शिखरिणी)

स्वतःसिद्धं ज्ञानं दुरघसुकृतारण्यदहनं
महामोहध्वान्तप्रबलतरतेजोमयमिदम् ।
विनिर्मुक्तेर्मूलं निरुपधिमहानंदसुखदं
यजाम्येतन्नित्यं भवपरिभवध्वंसनिपुणम् ।। २१६ ।।
अयं जीवो जीवत्यघकुलवशात् संसृतिवधू-
धवत्वं संप्राप्य स्मरजनितसौख्याकुलमतिः।
क्वचिद् भव्यत्वेन व्रजति तरसा निर्वृतिसुखं
तदेकं संत्यक्त्वा पुनरपि स सिद्धो न चलति।। २१७।।

(हरिगीत)

जो रहित हैं नित रति-अरति उपहास अर शोकादि से।
उन वीतरागी संत को जिन कहें सामायिक सदा।। १३१ ।।
जो जुगुप्सा भय वेद विरहित नित्य निज में रत रहें।
उन वीतरागी सन्त को जिन कहें सामायिक सदा।। १३२ ।।

ॐ ह्रीं नोकषायवर्जयितुः स्थायिसामायिकमिति प्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४५।।

अब इस कलश में नोकषायरूप विकारीभावों के त्याग की बात कहते हैं –

(हरिगीत)

मोहान्ध जीवों को सुलभ पर आत्मनिष्ठ समाधिरत।
जो जीव हैं उन सभी को है महादुर्लभ भाव जो।।
वह भवस्त्री उत्पन्न सुख-दुखश्रेणिकारक रूप है।
मैं छोड़ता उस भाव को जो नोकषायस्वरूप है।। २१८ ।।

ॐ ह्रीं नोकषायादि-विकारीभावत्यागप्रेरक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४६।।

यहाँ परम समाधि अधिकार का समापन करते हुए कहा है कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान करनेवालों को सामायिक स्थायी है –

(गाथा)

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १३१ ।।
जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे।। १३२ ।।

(शिखरिणी)

त्यजाम्येतत्सर्वं ननु नवकषायात्मकमहं
मुदा संसारस्त्रीजनितसुखदुःखावलिकरम्।
महामोहान्धानां सततसुलभं दुर्लभतरं।
समाधौ निष्ठानामनवरतमानन्दमनसाम्।। २१८ ।।

(हरिगीत)

जो धर्म एवं शुक्लध्यानी नित्य ध्यावें आतमा।
उन वीतरागी सन्त को जिन कहें सामायिक सदा।। १३३ ।।

ॐ ह्रीं धर्म-शुक्लध्यानस्य ध्यातुः स्थायिसामायिकमिति प्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४७।।

अब इस कलश में कहते हैं कि धर्म और शुक्लध्यानरूप परिणमित आत्मा ही परमसमाधि में स्थित है –

(हरिगीत)

इस अनघ आनन्दमय निजतत्त्व के अभ्यास से।
है बुद्धि निर्मल हुई जिनकी धर्म शुक्ल ध्यान से।।
मन वचन मग से दूर हैं जो वे सुखी शुद्धातमा।
उन रतनत्रय के साधकों को प्राप्त हो निज आतमा।। २१९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मरतिफलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३४८।।

।। परम भक्ति अधिकार ।।

अब कहते हैं कि जो रत्नत्रय की भक्ति करता है, उसके निवृत्ति भक्ति है – (हरिगीत)

भक्ति करें जो श्रमण श्रावक ज्ञान-दर्शन-चरण की।
निरवृत्ति भक्ति उन्हें हो इस भाँति सब जिनवर कहें ।। १३४ ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणभक्ति स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३४९।।

(गाथा)

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ।। १३३।।

(मंदाक्रान्ता)

शुक्लध्याने परिणतमतिः शुद्धरत्नत्रयात्मा
धर्मध्यानेप्यनघपरमानन्दतत्त्वाश्रितेऽस्मिन्।
प्राप्नोत्युच्चैरपगतमहद्दुःखजालं विशालं
भेदाभावात् किमपि भविनां वाङ्मनोमार्गदूरम्।। २१९ ।।

(गाथा)

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं ।। १३४ ।।

अब इस कलश में कहते हैं कि शुद्ध रत्नत्रयधारी श्रावक या संयमी सदा निश्चय भक्ति से सम्पन्न हैं –

(हरिगीत)

संसारभयहर ज्ञानदर्शनचरण की जो संयमी।
श्रावक करें भव अन्तकारक अतुल भक्ती निरन्तर।।
वे काम क्रोधादिक अखिल अघ मुक्त मानस भक्तगण।
ही लोक में जिनभक्त सहृदय और सच्चे भक्त हैं।। २२० ।।

ॐ ह्रीं निश्चयभक्ति स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५०।।

अब व्यवहारभक्ति का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की भक्ति करें गुणभेद से।
वह परमभक्ति कही है जिनसूत्र में व्यवहार से।। १३५ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारभक्ति स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३५१।।

अब इस कलश में सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हैं –

(दोहा)

सिद्धवधूधव सिद्धगण नाशक कर्मसमूह।
मुक्तिनिलयवासी गुणी वंदन करूँ सदीव।। २२१ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिनः स्मरण प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५२।।

(मंदाक्रान्ता)

सम्यक्त्वेऽस्मिन् भवभयहरे शुद्धबोधे चरित्रे
भक्तिं कुर्यादनिशमतुलां यो भवच्छेददक्षाम्।
कामक्रोधाद्यखिलदुरघव्रातनिर्मुक्तचेताः
भक्तो भक्तो भवति सततं श्रावकः संयमी वा।। २२० ।।

(गाथा)

मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।
जो कुणदि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं।। १३५ ।।

(अनुष्टुभ्)

उद्धूतकर्मसंदोहान् सिद्धान् सिद्धिवधूधवान्।
संप्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान्।। २२१।।

अब इस कलश में निश्चय-व्यवहार निर्वाण भक्ति का स्वरूप कहते हैं -

(दोहा)

सिद्धभक्ति व्यवहार है जिनमत के अनुसार।
नियतभक्ति है रतनत्रय भविजन तारणहार।। २२२ ।।

ॐ ह्रीं निश्चय-व्यवहारभक्ति स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५३।।

अब इस कलश में कहते हैं कि सिद्धपद शुद्धोपयोग का फल है -

(दोहा)

सब दोषों से दूर जो शुद्धगुणों का धाम।
आत्मध्यानफल सिद्धपद सूरि कहें सुखधाम।। २२३ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगफलप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५४।।

अब इन तीन कलशों में सिद्ध भगवान की स्तुति की गई है -

(हरिगीत)

शिववधूसुखखान केवलसंपदा सम्पन्न जो।
पापाटवी पावक गुणों की खान हैं जो सिद्धगण।।
भवक्लेश सागर पार अर लोकाग्रवासी सभी को।
वंदन करूँ मैं नित्य पाऊँ परमपावन आचरण।। २२४ ।।

(आर्या)

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता।
निश्चयनिर्वृतिभक्ती रत्नत्रयभक्तिरित्युक्ता।। २२२।।
निःशेषदोषदूरं केवलबोधादिशुद्धगुणनिलयं।
शुद्धोपयोगफलमिति सिद्धत्वं प्राहुराचार्याः।। २२३।।

(शार्दूलविक्रीडित)

ये लोकाग्रनिवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः।
ये शुद्धात्मविभावनोद्भवमहाकैवल्यसंपद्गुणाः
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान्।। २२४ ।।

ज्ञेयोदधि के पार को जो प्राप्त हैं वे सुख उदधि।
शिववधूमुखकमलरवि स्वाधीनसुख के जलनिधि।।
आठ कर्मों के विनाशक आठगुणमय गुणगुरु।
लोकाग्रवासी सिद्धगण की शरण में मैं नित रहूँ।। २२५ ।।

सुसिद्धिरूपी रम्यरमणी के मधुर रमणीय मुख।
कमल के मकरंद के अलि वे सभी जो सिद्धगण।।
नरसुरगणों की भक्ति के जो योग्य शिवमय श्रेष्ठ हैं।
मैं उन सभी को परमभक्ति भाव से करता नमन।। २२६ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिनः स्तुतिप्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५५।।

इस गाथा में निज परमात्मा की भक्ति का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

जो थाप निज को मुक्तिपथ भक्ति निवृत्ति की करें।
वे जीव निज असहाय गुण सम्पन्न आतम को वरें।। १३६ ।।

ॐ ह्रीं निजपरमात्मभक्तिस्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५६।।

(शार्दूलविक्रीडित)

त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारंगतान्
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान्।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्
नित्यान् तान् शरणं व्रजामि सततं पापाटवीपावकान्।। २२५ ।।

(वसंततिलका)

ये मर्त्यदैवनिकुरम्बपरोक्षभक्तियोग्याः सदा शिवमयाः प्रवराः प्रसिद्धाः।
सिद्धाः सुसिद्धिरमणीरमणीयवक्त्र पंकेरुहोरुमकरंदमधुव्रताः स्युः।। २२६।।

(गाथा)

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ असहायगुणं णियप्पाणं।। १३६ ।।

अब इस कलश में कहते हैं कि आत्मा में स्वयं को स्थापित करनेवाला आत्मा मुक्ति-वधू का स्वामी होता है -

(हरिगीत)

शिवहेतु निरुपम सहज दर्शन ज्ञान सम्यक् शीलमय।
अविचल त्रिकाली आत्मा में आत्मा को थाप कर।।
चिच्चमत्कारी भक्ति द्वारा आपदाओं से रहित।
घर में बसें आनन्द से शिव रमापति चिरकाल तक।। २२७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनि लीनात्मनः स्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५७।।

अब इन दो गाथाओं में निश्चय योगभक्ति का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

जो साधु आतम लगावे रागादि के परिहार में।
वह योग भक्ति युक्त हैं यह अन्य को होवे नहीं।। १३७ ।।

जो साधु आतम लगावे सब विकल्पों के नाश में।
वह योग भक्ति युक्त हैं यह अन्य को होवे नहीं।। १३८ ।।

ॐ ह्रीं निश्चययोगभक्तिस्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३५८।।

अब टीकाकार मुनिराज कलश को उद्धृत करते हैं, जिामें योग का कथन किया गया है -

---

(स्रग्धरा)

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्
नित्ये निर्मुक्तिहेतौ निरुपमसहजज्ञानदृक्शीलरूपे।
संस्थाप्यानंदभास्वन्निरतिशयगृहं चिच्चमत्कारभक्त्या
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः।। २२७।।

(गाथा)

रायादीपरिहारे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।। १३७।।
सव्वावियप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।। १३८।।

(दोहा)

निज आतम के यत्न से मनगति का संयोग।
निज आतम में होय जो वही कहावे योग।। ६५ ।।

निज आतम में आतमा को जोड़े जो योगि।
योग भक्ति वाला वही मुनिवर निश्चय योगि।। २२८ ।।

ॐ ह्रीं योगस्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३५९।।

अब इस कलश में योगभक्ति का फल बताते हैं -

(दोहा)

आत्मलब्धि रूपा मुकति योगभक्ति से होय।
योगभक्ति सर्वोत्तमा भेदाभावे होय।। २२९ ।।

ॐ ह्रीं योगभक्तिफलप्रतिपादक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६०।।

अब इस गाथा में परमयोग का स्वरूप स्पष्ट करते हैं -

(हरिगीत)

जिनवर कथित तत्त्वार्थ में निज आतमा को जोड़ना।
ही योग है यह जान लो विपरीत आग्रह छोड़कर।। १३९ ।।

ॐ ह्रीं परमयोगस्वरूपनिरूपक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६१।।

(अनुष्टुभ्)

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ।। ६५ ।।[1]
आत्मानमात्मनात्मायं युनक्त्येव निरन्तरम्।
स योगभक्तियुक्तः स्यान्निश्चयेन मुनीश्वरः।। २२८ ।।
भेदाभावे सतीयं स्याद्योगभक्तिरनुत्तमा।
तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्तिर्भवति योगिनाम्।। २२९ ।।

(गाथा)

विवरीयाभिणिवेसं परिचत्ता जोणहकहियतच्चेसु।
जो जुंजदि अप्पाणं णियभावो सो हवे जोगो।। १३९ ।।

---

१. ग्रन्थ का नाम एवं श्लोक संख्या अनुपलब्ध है

अब इस कलश में भी योग को परिभाषित करते हैं –

(दोहा)

छोड़ दुराग्रह जैन मुनि मुख से निकले तत्त्व।
में जोड़े निजभाव तो वही भाव है योग।। २३० ।।

ॐ ह्रीं योगस्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६२।।

यहाँ योगभक्ति को धारण करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

वृषभादि जिनवरदेव ने पाया परम निर्वाण सुख।
इस योगभक्ति से अतः इस भक्ति को धारण करो।। १४० ।।

ॐ ह्रीं योगभक्तिप्रेरक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३६३।।

अब इन तीन कलशों में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए योगभक्ति के मार्ग पर चलने को प्रेरित करते हैं –

(वीरछन्द)

शुद्धपरिणति गुणगुरुओं की अद्भुत अनुपम अति निर्मल।
तीन लोक में फैल रही है जिनकी अनुपम कीर्ति धवल।।
इन्द्रमुकुटमणियों से पूजित जिनके पावन चरणाम्बुज।
उन ऋषभादि परम गुरुओं को वंदन बारंबार सहज।। २३१ ।।

(वसंततिलका)

तत्त्वेषु जैनमुनिनाथमुखारविंद-
व्यक्तेषु भव्यजनताभवघातकेषु।
त्यक्त्वा दुराग्रहममुं जिनयोगिनाथः
साक्षाद्युनक्ति निजभावमयं स योगः।। २३० ।।

(गाथा)

उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।। १४० ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

नाभेयादिजिनेश्वरान् गुणगुरून् त्रैलोक्यपुण्योत्करान्
श्रीदेवेन्द्रकिरीटकोटिविलसन्माणिक्यमालार्चितान्।
पौलोमीप्रभृतिप्रसिद्धदिविजाधीशांगनासंहतेः
शक्रेणोद्भवभोगहासविमलान् श्रीकीर्तिनाथान् स्तुवे।। २३१।।

ऋषभदेव से महावीर तक इसी मार्ग से मुक्त हुए।
इसी विधि से योगभक्ति कर शिवरमणी सुख प्राप्त किये।। २३२ ।।

(दोहा)

मैं भी शिवसुख के लिए योगभक्ति अपनाऊँ।
भव भय से हे भव्यजन इसको ही अपनाओ।। २३३ ।।

ॐ ह्रीं योगभक्तिमार्गे गमनप्रेरक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६४।।

अब इस कलश में परमब्रह्म में लीन होने की भावना व्यक्त करते हैं –

(वीरछन्द)

गुरुदेव की सत्संगति से सुखकर निर्मल धर्म अजोड़।
पाकर मैं निर्मोह हुआ हूँ राग-द्वेष परिणति को छोड़।।
शुद्धध्यान द्वारा मैं निज को ज्ञानानन्द तत्त्व में जोड़।
परमब्रह्म निज परमातम में लीन हो रहा हूँ बेजोड़।। २३४।।

ॐ ह्रीं परमब्रह्मणि लीनताप्रेरक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६५।।

अब इन दो कलशों में तत्त्वरुचि का फल बताते हैं –

(दोहा)

इन्द्रिय लोलुप जो नहीं तत्त्वलोलुपी चित्त।
उनको परमानन्दमय प्रगटे उत्तम तत्त्व।। २३५ ।।

(आर्या)

वृषभादिवीरपश्चिमजिनपतयोप्येवमुक्तमार्गेण।
कृत्वा तु योगभक्तिं निर्वाणवधूटिकासुखं यान्ति।। २३२।।
अपुनर्भवसुखसिद्ध्यै कुर्वेऽहं शुद्धयोगवरभक्तिम्।
संसारघोरभीत्या सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्।। २३३ ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

रागद्वेषपरंपरापरिणतं चेतो विहायाधुना
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानंदात्मतत्त्वस्थितः।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरोः सन्निधौ
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि।। २३४ ।।

(अनुष्टुभ्)

निर्वृतेन्द्रियलौल्यानां तत्त्वलोलुपचेतसाम्।
सुन्दरानन्दनिष्यन्दं जायते तत्त्वमुत्तमम्।। २३५।।

अति अपूर्व आतमजनित सुख का करें प्रयत्न।
वे यति जीवन्मुक्त हैं अन्य न पावे सत्य।। २३६ ।।

ॐ ह्रीं तत्त्वरुचिफलप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६६।।

अब इस कलश में मुमुक्षु का प्रयोजन कहते हैं –

(हरिगीत)

अद्वन्द्व में है निष्ट एवं अनघ जो दिव्यातमा।
मैं एक उसकी भावना संभावना करता सदा।।
मैं मुक्ति का चाहक तथा हूँ निष्पृही भवसुखों से।
है क्या प्रयोजन अब मुझे इन परपदार्थ समूह से।। २३७।।

ॐ ह्रीं मुमुक्षुजीवस्य प्रयोजनप्रकाशक-श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३६७।।

जयमाला

(दोहा)

परमसमाधि भक्ति अर निश्चय प्रायश्चित्त।
अधिकारों पर अब कहें जयमाला धरि चित्त।। १ ।।

(रेखता)

लोक में होते रहते नित्य अनर्गल पुण्य-पाप के भाव।
त्यागकर उन्हें प्रगट करना हृदय में वीतरागमय भाव।।
उन्हें कहते हैं प्रायश्चित्त उन्हीं से होता आतम शुद्ध।
आतमा के जो निर्मल भाव उन्हीं से आतम होय विशुद्ध।। २ ।।

(अनुष्टुभ्)

अत्यपूर्वनिजात्मोत्थभावनाजातशर्मणे ।
यतन्ते यतयो ये ते जीवन्मुक्ता हि नापरे।। २३६।।

(वसंततिलका)

अद्वन्द्वनिष्ठमनघं परमात्मतत्त्वं
संभावयामि तदहं पुनरेकमेकम्।
किं तैश्च मे फलमिहान्यपदार्थसार्थैः
मुक्तिस्पृहस्य भवशर्मणि निःस्पृहस्य।। २३७।।

आतमा है स्वभाव से शुद्ध उसी के आश्रय से पर्याय।
शुद्ध होती है जिनवर कहें प्रगट होती निर्मल पर्याय।।
वही है निश्चय प्रायश्चित्त मुनिवरों को होता है नित्य।
उसी से होते हैं निर्मोह उसी से जीवन परम पवित्र।। ३।।

छोड़ देते हैं वचन विकल्प और मन के भी विविध विचार।
काय से हट जाता उपयोग स्वयं का एकमात्र आधार।।
स्वयं ही परिणति अर उपयोग शुद्ध हो जाते हैं साधार।
समा जाते हैं अपने आप आप में अपने ही आधार।। ४।।

इसे कहते हैं परम समाधि न इसमें जग की कोई उपाधि।
न इसमें कोई न आधि न व्याधि यही है केवल परम समाधि।।
यही है मोक्षमार्ग परमार्थ यही है असली आतमधर्म।
यही है एकमात्र कर्त्तव्य यही है परम धर्म का मर्म।। ५।।

इसी को सामायिक कहते इसी को कहते आतमध्यान।
इसी को कहते परम समाधि इसी से होता निज कल्याण।।
इसी से सभी धर्म सधते इसी से होता आतमज्ञान।
इसी से बनता ऐसा भाव सभी आतम हैं एक समान।। ६।।

शुद्ध रत्नत्रय का धारण निर्वृत्ति भक्ति कही जाती।
इसी को कहते निश्चय भक्ति यही निर्वाण भक्ति होती।।
इसी से तन्मय होते सन्त व्रती श्रावक में रहती है।
शुद्ध निर्मल परिणति के रूप सदा भक्तों में बहती है।। ७।।

न यह शुद्धोपयोग होती न इसमें नृत्य-गान होते।
नहीं इसमें चिन्तन होता न इसमें शुभ विकल्प होते।।
अरे ये सभी नहीं रहते निरन्तर कभी-कभी होते।
शुद्ध निर्मल परिणति के रूप निर्वृत्ति भक्ति सदा रहती।। ८।।

अरे रे अति प्रसन्नचित से ज्ञानिजन करते हैं जो भक्ति।
अरे गुणभेदों के जरिये सिद्ध भगवन्तों की वह भक्ति।।
परमभक्ति उसको कहते अरे व्यवहार निरूपण में।
यही बतलाया है स्पष्ट जिनेश्वर के परमागम में।। ९।।

किसी के सुख-दुख का कर्त्ता न कोई होता इस जग में।
सभी अपने-अपने स्वामी और कर्त्ता-धर्त्ता होते।।
अरे इस परम सत्य का ज्ञान ज्ञानीजन को होता है।
अरे जिन भगवन्तों का भक्त नियम से ज्ञानी होता है।। १०।।

नहीं कुछ वे लेते-देते निरन्तर अपने में रहते।
आतमा का चिन्तन करते किसी का कुछ भी न करते।।
वीतरागी वाणी का लाभ लिया जाता है सन्तों से।
नहीं कुछ माँगा जाता है वीतरागी भगवन्तों से।। ११।।

ॐ ह्रीं श्री शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-परमसमाधि-परमभक्तिअधिकारेभ्यः जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

समाधि-भक्ति अधिकार निश्चय प्रायश्चित्त की।
है आनन्द अपार जयमाला पूरण हुई।। ११।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

यद्यपि यह बात तो जिनवाणी में अनेक स्थानों पर प्राप्त हो जाती है कि सम्यग्दर्शन ज्ञान के बिना सम्यक्चारित्र हो ही नहीं सकता; तथापि यहाँ तो यह कहा जा रहा है कि जिसप्रकार कोठार में रखा बीज उगता नहीं, बढ़ता नहीं, फलता भी नहीं है। उगने, बढ़ने और फलने के लिए उसे उपजाऊ मिट्टीवाले खेत में बोना आवश्यक है, उसे आवश्यक खाद-पानी दिया जाना भी आवश्यक है।

उसीप्रकार चारित्र को धारण किये बिना सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कोठार में रखे हुए बीज के समान निष्फल हैं, मुक्तिरूपी फल को प्राप्त कराने में समर्थ नहीं है; इसलिए सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से मण्डित जीवों को जल्दी से जल्दी सम्यक्चारित्र धारण करना चाहिए। **– नियमसार, पृष्ठ १८४**

६

निश्चयपरमावश्यक एवं शुद्धोपयोग अधिकार पूजन

स्थापना

(रोला)

अरे परम आवश्यक यह अधिकार मनोहर।
इसमें अवश कर्म की अद्‌भुत महिमा गाई।।
नहीं किसी के वश में जो वह अवश कर्म है।
अवश कर्म का भाव परम–आवश्यक भाई।। १।।

अरे शुभाशुभ भाव रहित आतम का अनुभव।
परम वीतरागी परिणति शुद्धोपयोग है।।
कर्मक्षय का हेतु मूल मुक्ती का मारग।
ज्ञानानन्दी भाव अनूपम परमयोग है।। २।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक–शुद्धोपयोगअधिकारौ अत्र अवतरत-अवतरत संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक–शुद्धोपयोगअधिकारौ अत्र तिष्ठत-तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक–शुद्धोपयोगअधिकारौ अत्र मम सन्निहिता भवत-भवत वषट्। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(मानव)

जल

रे मलिन वस्तुओं को यह जल धोकर निर्मल करता।
निज आतम में अपनापन आतम को निर्मल करता।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। १।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक–शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां जन्म-जरा-मत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

संतप्त जगत को शीतल चन्दन शीतल करता है।
संतप्त आतमा जग में निज को शीतल करता है।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। २ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

शुद्धोपयोग आवश्यक अक्षत हो इस जीवन में।
अक्षत अर्पित करता हूँ ना घूमू इस भव वन में।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ३ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

मन्मथ का मर्दन करने देवोपनीत सुमनों को।
लेकर चरणों में आया समता हो अन्तर्मन को।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ४ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवैद्य

आशा से, शान्त क्षुधा हो शुद्धोपयोग मन भाया।
मनहर मोहक ये व्यंजन भर थाल सजाकर लाया।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ५ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

मणिमय निर्धूम मनोहर यह स्वपर प्रकाशक दीपक।
आतम का तम हरने को करता हूँ आज समर्पित।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ६ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां मोहान्धकार-विनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यह धूप समर्पण करता निष्कर्म भाव पाने को।
निष्कर्म भाव है साधन निज आतम अपनाने को।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ७ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

पुण्य-पाप के फल सब अबतक हमने पाये हैं।
शुद्धोपयोग का फल अब पाने को हम आये हैं।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ८ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

जग के वैभव सब अबतक पा-पाकर छोड़े हमने।
है सार नहीं कुछ उनमें पाना शिव इस जीवन में।।
है अवशभाव आवश्यक सन्तों को है आवश्यक।
शुद्धोपयोग सन्तों का है कार्य परम आवश्यक।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। निश्चयपरमावश्यक अधिकार ।।

अब कहते हैं कि कर्म-नाशक योगरूप परम आवश्यक कर्म ही निर्वाण का मार्ग है -

(हरिगीत)

जो अन्य के वश नहीं कहते कर्म आवश्यक उसे।
कर्मनाशक योग को निर्वाण मार्ग कहा गया ।। १४१ ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणमार्गप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३६८।।

अब इन दो कलशों में निश्चय परम आवश्यक का स्वरूप कहते हैं -

(मनहरण)

विलीन मोह-राग-द्वेष-मेघ चहुँ ओर के,
चेतना के गुणगण कहाँ तक बखानिये।
अविचल जोत निष्कंप रत्नदीप सम,
विलसत सहजानन्द मय जानिये ।।
नित्य आनन्द के प्रशमरस में मगन,
शुद्ध उपयोग का महत्त्व पहिचानिये।
नित्य ज्ञानतत्त्व में विलीन यह आतमा,
स्वयं धर्मरूप परिणत पहिचानिये ।। ६६ ।।

(गाथा)

जो ण हवदि अण्णवसो तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।
कम्मविणासणजोगो णिव्वुदिमग्गो त्ति पिज्जुत्तो ।। १४१ ।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं
नित्यानन्दप्रसरसरसे ज्ञानतत्त्वे निलीय।
प्राप्स्यत्युच्चैरविचलतया निःप्रकम्पप्रकाशां
स्फूर्जज्ज्योतिः सहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम् ।। ६६ ।।[१]

१. प्रवचनसार, कलश-५

(रोला)

जो सत् चित् आनंदमयी निज शुद्धातम में।
रत होने से अरे स्ववशताजन्य कर्म जो।।
वह आवश्यक परम करम ही मुक्तिमार्ग है।
उससे ही मैं निर्विकल्प सुख को पाता हूँ।। २३८ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयपरमावश्यकस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं ।।३६९।।

अब यहाँ निश्चय परम आवश्यक कर्म का अर्थ बताते हैं –

(हरिगीत)

जो किसी के वश नहीं वह अवश उसके कर्म को।
कहे आवश्यक वही है युक्ति मुक्ति उपाय की।। १४२ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयपरमावश्यक-अर्थप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३७०।।

अब इस कलश में स्वहितनिरत योगी का स्वरूप कहते हैं –

(रोला)

निज आतम से भिन्न किसी के वश में न हो।
स्वहित निरत योगी नित ही स्वाधीन रहे जो।।
दुरिततिमिरनाशक अमूर्त्त ही वह योगी है।
यही निरुक्तिक अर्थ सार्थक कहा गया है।। २३९ ।।

ॐ ह्रीं स्ववशयोगीस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३७१।।

आत्मन्युच्चैर्भवति नियतं सच्चिदानन्दमूर्त्तौ
धर्मः साक्षात् स्ववशजनितावश्यककर्मात्मकोऽयम्।
सोऽयं कर्मक्षयकरपटुर्निर्वृतेरेकमार्गः
तेनैवाहं किमपि तरसा यामिं शं निर्विकल्पम्।। २३८।।

(गाथा)

ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं ति बोद्धव्वा।
जुत्ति त्ति उवाअं ति य णिरवयवो होदि णिज्जुत्ती।। १४२।।

(मंदाक्रांता)

योगी कश्चित्स्वहितनिरतः शुद्धजीवास्तिकायाद्
अन्येषां यो न वश इति या संस्थितिः सा निरुक्तिः।
तस्मादस्य प्रहतदुरितध्वान्तपुंजस्य नित्यं
स्फूर्जज्योतिःस्फुटितसहजावस्थयाऽमूर्तता स्यात्।। २३९ ।।

अब यह बताते हैं कि अशुभभावरूप परिणत मुनि अन्यवश है –

(हरिगीत)

अशुभभाव सहित श्रमण है अन्यवश बस इसलिये।
उसे आवश्यक नहीं यह कथन है जिनदेव का।। १४३ ।।

ॐ ह्रीं अन्यवशमुनिस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३७२।।

अब इन कलशों में स्ववश मुनि एवं अन्यवश मुनि के विषय में कहते हैं –

(ताटंक)

त्रिभुवन घर में तिमिर पुंज सम मुनिजन का यह घन नव मोह।
यह अनुपम घर मेरा है – यह याद करें निज तृण घर छोड़।। २४० ।।

ग्रन्थ रहित निर्ग्रंथ पाप बन दहें पुजें इस भूतल में।
सत्यधर्म के रक्षामणि मुनि विरहित मिथ्यामल कलि में।। २४१ ।।

मतिमानों को अतिप्रिय एवं शत इन्द्रों से अर्चित तप।
उसको भी पाकर जो मन्मथ वश है कलि से घायल वह।। २४२ ।।

(गाथा)

वट्टदि जो सो समणो अण्णवसो होदि असुहभावेण।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवस्सयलक्खणं ण हवे।। १४३।।

(मालिनी)

अभिनवमिदमुच्चैर्मोहनीयं मुनीनां
त्रिभुवनभुवनान्तर्ध्वांतपुंजायमानम्।
तृणगृहमपि मुक्त्वा तीव्रवैराग्यभावाद्
वसतिमनुपमां तामस्मदीयां स्मरन्ति।। २४० ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

कोपि क्वापि मुनिर्बभूव सुकृती काले कलावप्यलं
मिथ्यात्वादिकलंकपंकरहितः सद्धर्मरक्षामणिः।
सोऽयं संप्रति भूतले दिवि पुनर्देवैश्च संपूज्यते
मुक्तानेकपरिग्रहव्यतिकरः पापाटवीपावकः।। २४१।।

(शिखरिणी)

तपस्या लोकेस्मिन्निखिलसुधियां प्राणदयिता।
नमस्या सा योग्या शतमखशतस्यापि सततम्
परिप्राप्यैतां यः स्मरतिमिरसंसारजनितं
सुखं रेमे कश्चिद्वत कलिहतोऽसौ जडमतिः।। २४२।।

मुनि होकर भी अरे अन्यवश संसारी है, दुखमय है।
और स्ववशजन सुखी मुक्त रे बस जिनवर से कुछ कम है ।। २४३ ।।

अत:एव श्री जिनवर पथ में स्ववश मुनि शोभा पाते।
और अन्यवश मुनिजन तो बस चमचों सम शोभा पाते ।। २४४ ।।

ॐ ह्रीं अन्यवशस्ववशमुनिस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।३७३।।

अब यह बताते हैं कि शुभभावरूप परिणत मुनि भी अन्यवश है –

(हरिगीत)

वे संयमी भी अन्यवश हैं जो रहें शुभभाव में।
उन्हें आवश्यक नहीं यह कथन है जिनदेव का।। १४४ ।।

ॐ ह्रीं शुभभावरतसंयमी-अपि-अन्यवशप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३७४।।

अब इस कलश में निज आत्मा को भजने की प्रेरणा दी जा रही है –

(ताटंक)

अतः मुनिवरो देवलोक के क्लेशों से रति को छोड़ो।
सुख-ज्ञान पूर नय-अनय दूर निज आतम में निज को जोड़ो।। २४५ ।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३७५।।

(आर्या)

अन्यवशः संसारी मुनिवेषधरोपि दुःखभाङ्नित्यम्।
स्ववशो जीवन्मुक्तः किंचिन्न्यूनो जिनेश्वरादेषः ।। २४३ ।।
अत एव भाति नित्यं स्ववशो जिननाथमार्गमुनिवर्गे।
अन्यवशो भात्येवं भृत्यप्रकरेषु राजवल्लभवत् ।। २४४ ।।

(आर्या)

जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे ।। १४४ ।।

(हरिणी)

त्यजतु सुरलोकादिक्लेशे रतिं मुनिपुंगवो
भजतु परमानन्दं निर्वाणकारणकारणम्।
सकलविमलज्ञानावासं निरावरणात्मकं
सहजपरमात्मानं दूरं नयानयसंहतेः ।। २४५।।

इस गाथा में भी अन्यवश का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

विकल्पों में मन लगावें द्रव्य–गुण–पर्याय के।
अरे वे भी अन्यवश निर्मोहजिन ऐसा कहें।। १४५ ।।

ॐ ह्रीं अन्यवशस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३७६।।

अब इन दो कलशों में परचिन्ता को छोड़ने की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

ब्रह्मनिष्ठ मुनिवरों को दृष्टादृष्ट विरुद्ध।
आत्मकार्य को छोड़ क्या परचिन्ता से सिद्ध।। ६७ ।।
जबतक ईंधन युक्त है अग्नि बढ़े भरपूर।
जबतक चिन्ता जीव को तबतक भव का पूर।। २४६ ।।

ॐ ह्रीं परचिन्तानिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३७७।।

इस गाथा में आत्मवश मुनि का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

परभाव को परित्याग ध्यावे नित्य निर्मल आतमा।
वह आत्मवश है इसलिए ही उसे आवश्यक कहे।। १४६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मवशमुनिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३७८।।

(गाथा)

दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो।
मोहंधयारववगयसमणा कहयंति एरिसयं।। १४५ ।।

(अनुष्टुभ्)

आत्मकार्यं परित्यज्य दृष्टादृष्टविरुद्धया।
यतीनां ब्रह्मनिष्ठानां किं तया परिचिन्तया।। ६७।।[1]
यावच्चिन्तास्ति जन्तूनां तावद्भवति संसृतिः।
यथेंधनसनाथस्य स्वाहानाथस्य वर्धनम्।। २४६ ।।

(गाथा)

परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं।
अप्पवसो सो होदि हु तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।। १४६ ।।

---

१. ग्रन्थ का नाम एवं आचार्य का नाम अनुपलब्ध है।

अब इन कलशों में भी आत्मवश मुनि का स्वरूप एवं महिमा कहते हैं –

(ताटंक)

शुद्धबोधमय मुक्ति सुन्दरी को प्रमोद से प्राप्त करें।
भवकारण का नाश और सब कर्मावलि का हनन करें।।
वर विवेक से सदा शिवमयी परवशता से मुक्त हुए।
वे उदारधी संत शिरोमणि स्ववश सदा जयवन्त रहें।। २४७ ।।

(दोहा)

काम विनाशक अवंचक पंचाचारी योग्य।
मुक्तिमार्ग के हेतु हैं गुरु के वचन मनोज्ञ।। २४८ ।।
जिनप्रतिपादित मुक्तिमग इसप्रकार से जान।
मुक्ति संपदा जो लहे उसको सतत् प्रणाम।। २४९ ।।

(रोला)

कनक कामिनी की वांछा का नाश किया हो।
सर्वश्रेष्ठ है सभी योगियों में जो योगी।।
काम भील के काम तीर से घायल हम सब।
हे योगी! तुम भववन में हो शरण हमारे।। २५० ।।

(पृथ्वी)

जयत्ययमुदारधीः – स्ववशयोगिवृन्दारकः
प्रनष्टभवकारणः – प्रहतपूर्वकर्मावलिः।
स्फुटोत्कटविवेकतः स्फुटितशुद्धबोधात्मिकां
सदाशिवमयां मुदा व्रजति सर्वथा निर्वृतिम्।। २४७ ।।

(अनुष्टुभ्)

प्रध्वस्तपंचबाणस्य पंचाचारांचिताकृतेः।
अवंचकगुरोर्वाक्यं कारणं मुक्तिसंपदः।। २४८।।
इत्थं बुद्ध्वा जिनेन्द्रस्य मार्गं निर्वाणकारणम्।
निर्वाणसंपदं याति यस्तं वंदे पुनः पुनः।। २४९।।

(द्रुतविलंबित)

स्ववशयोगिनिकायविशेषक प्रहतचारुवधूकनकस्पृह।
त्वमसि नश्शरणं भवकानने स्मरकिरातशरक्षतचेतसाम्।।२५०।।

अनशनादि तप का फल केवल तन का शोषण।
अन्य न कोई कार्य सिद्ध होता है उससे।।
हे स्ववश योगि ! तेरे चरणों के नित चिन्तन से।
शान्ति पा रहा सफल हो रहा मेरा जीवन।। २५१ ।।

समता रस से पूर्ण भरा होने से पावन।
निजरस के विस्तार पूर से सब अघ धोये।।
स्ववश हृदय में संस्थित जो पुराण पावन है।
शुद्धसिद्ध वह तेजराशि जयवंत जीव है।। २५२ ।।

(दोहा)

वीतराग सर्वज्ञ अर आत्मवशी गुरुदेव।
इनमें कुछ अन्तर नहीं हम जड़ माने भेद।। २५३ ।।
स्ववश महामुनि अनन्यधी और न कोई अन्य।
सरव करम से बाह्य जो एकमात्र वे धन्य।। २५४ ।।

ॐ ह्रीं आत्मवशमुनिमहिमाप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३७९।।

अब यहाँ शुद्ध निश्चय आवश्यक की प्राप्ति का उपाय बताते हैं –

(द्रुतविलंबित)
अनशनादितपश्चरणैः फलं तनुविशोषणमेव न चापरम्।
तव पदांबुरुहद्वयचिंतया स्ववश जन्म सदा सफलं मम।। २५१ ।।

(मालिनी)
जयति सहजतेजोराशिनिर्मग्नलोकः
स्वरसविसरपूरक्षालितांहः समंतात्।
सहजसमरसेनापूर्णपुण्यः पुराणः
स्ववशमनसि नित्यं संस्थितः शुद्धसिद्धः।। २५२ ।।

(अनुष्टुभ्)
सर्वज्ञवीतरागस्य स्ववशस्यास्य योगिनः।
न कामपि भिदां क्वापि तां विद्मो हा जडा वयम्।। २५३।।
एक एव सदा धन्यो जन्मन्यस्मिन्महामुनिः।
स्ववशः सर्वकर्मभ्यो बहिस्तिष्ठत्यनन्यधीः।। २५४।।

(हरिगीत)

आवश्यकों की चाह हो थिर रहो आत्मस्वभाव में।
इस जीव के हो पूर्ण सामायिक इसी परिणाम से।। १४७ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयआवश्यक-प्राप्त्युपायप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८०।।

अब इन दो कलशों में आत्मा का आश्रय लेने की प्रेरणा देते हैं –

(सोरठा)

प्रगटें दोष अनंत, यदि मन भटके आत्म से।
यदि चाहो भव अंत, मगन रहो निज में सदा।। ६८ ।।

(रोला)

अतिशय कारण मुक्ति सुन्दरी के सम सुख का।
निज आतम में नियत चरण भवदुख का नाशक।।
जो मुनिवर यह जान अनघ निज समयसार को।
जाने वे मुनिनाथ पाप अटवी को पावक।। २५५ ।।

ॐ ह्रीं आत्माश्रयप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८१।।

(गाथा)

आवासं जह इच्छसि अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं।
तेण दु सामण्णगुणं संपुण्णं होदि जीवस्स।। १४७।।

(मालिनी)

यदि चलति कथंचिन्मानसं स्वस्वरूपाद्
भ्रमति बहिरतस्ते सर्वदोषप्रसंगः।
तदनवरतमंतर्मग्नसंविग्नचित्तो
भव भवसि भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम्।। ६८।।[1]

(शार्दूलविक्रीडित)

यद्येवं चरणं निजात्मनियतं संसारदुःखापहं
मुक्तिश्रीललनासमुद्भवसुखस्योच्चैरिदं कारणम्।
बुद्ध्वेत्थं समयस्य सारमनघं जानाति यः सर्वदा
सोयं त्यक्तबहिःक्रियो मुनिपतिः पापाटवीपावकः।। २५५।।

---

१. अमृताशीति, छन्द ६४

अब यहाँ एक गाथा एवं दो कलशों में निश्चय आवश्यक करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जो श्रमण आवश्यक रहित चारित्र से अति भ्रष्ट वे।
पूर्वोक्त क्रम से इसलिए तुम नित्य आवश्यक करो।। १४८ ।।

(दोहा)

आवश्यक प्रतिदिन करो अघ नाशक शिव मूल।
वचन अगोचर सुख मिले जीवन में भरपूर।। २५६ ।।
निज आतम का चिन्तवन स्ववश साधु के होय।
इस आवश्यक करम से उनको शिवसुख होय।। २५७ ।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयआवश्यक-प्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३८२।।

अब यहाँ कहते हैं कि आवश्यक सहित श्रमण अन्तरात्मा है तथा इससे रहित श्रमण बहिरात्मा है –

(हरिगीत)

श्रमण आवश्यक सहित हैं शुद्ध अन्तर-आत्मा।
श्रमण आवश्यक रहित बहिरातमा हैं जान लो।। १४९ ।।

ॐ ह्रीं आवश्यकापेक्षया श्रमणस्य अन्तरात्मत्वं बहिरात्मत्वं च प्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८३।।

(गाथा)

आवासएण हीणो पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो।
पुव्वुत्तकमेण पुणो तम्हा आवासयं कुज्जा।। १४८ ।।

(मंदाक्रांता)

आत्मावश्यं सहजपरमावश्यकं चैकमेकं
कुर्यादुच्चैरघकुलहरं निर्वृतेर्मूलभूतम्।
सोऽयं नित्यं स्वरसविसरापूर्णपुण्यः पुराणः
वाचां दूरं किमपि सहजं शाश्वतं शं प्रयाति।। २५६।।

(अनुष्टुभ्)

स्ववशस्य मुनीन्द्रस्य स्वात्मचिन्तनमुत्तमम्।
इदं चावश्यकं कर्म स्यान्मूलं मुक्तिशर्मणः।। २५७।।

(गाथा)

आवासएण जुत्तो समणो सो होदि अंतरंगप्पा।
आवासयपरिहीणो समणो सो होदि बहिरप्पा।। १४९ ।।

अब आगे तीन कलशों में व एक गाथा में भी अन्तरात्मा और बहिरात्मा का स्वरूप बताते हैं – (रोला)

परमातम से भिन्न सभी जिय बहिरातम अर।
अन्तर आतमरूप कहे हैं दो प्रकार के।।
देह और आतम में धारे अहंबुद्धि जो।
वे बहिरातम जीव कहे हैं जिन आगम में।। ६९ ।।
अन्तरात्मा उत्तम मध्यम जघन कहे हैं।
क्षीणमोह जिय उत्तम अन्तर आतम ही है।।
अविरत सम्यग्दृष्टि जीव सब जघन कहे हैं।
इन दोनों के बीच सभी मध्यम ही जानो।। ७०।।
योगी सदा परम आवश्यक कर्म युक्त हो।
भव सुख दुख अटवी से सदा दूर रहता है।।
इसीलिए वह आत्मनिष्ठ अन्तर आतम है।
स्वात्मतत्त्व से भ्रष्ट आतमा बहिरातम है।। २५८ ।।

(हरिगीत)

जो रहे अन्तरबाह्य जल्पों में वही बहिरातमा।
पर न रहे जो जल्प में है वही अन्तर आतमा।। १५० ।।

ॐ ह्रीं अन्तरात्म-बहिरात्मस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि... ।।३८४।।

(अनुष्टुभ्)

बहिरात्मान्तरात्मेति स्यादन्यसमयो द्विधा।
बहिरात्मानयोर्देहकरणाद्युदितात्मधीः ।। ६९।।[1]
जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादविरतः सुदृक्।
प्रथमः क्षीणमोहोन्त्यो मध्यमोमध्यस्तयोः ।। ७०।।[2]

(मंदाक्रांता)

योगी नित्यं सहजपरमावश्यकर्मप्रयुक्तः
संसारोत्थप्रबलसुखदुःखाटवीदूरवर्ती।
तस्मात्सोऽयं भवति नितरामन्तरात्मात्मनिष्ठः
स्वात्मभ्रष्टो भवति बहिरात्मा बहिस्तत्त्वनिष्ठः ।। २५८ ।।

(गाथा)

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।। १५० ।।

---

१. मार्गप्रकाश ग्रन्थ में से उद्धृत छन्द २. वही

अब इन कलशों में अन्तरात्मा का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

उठ रहा जिसमें अनन्ते विकल्पों का जाल है।
वह वृहद् नयपक्षकक्षा विकट है विकराल है।।
उल्लंघन कर उसे बुध अनुभूतिमय निजभाव को।
हो प्राप्त अन्तर्बाह्य से समरसी एक स्वभाव को।। ७१ ।।

संसारभयकर बाह्य–अंतरजल्प तज समरसमयी।
चित्चमत्कारी एक आतम को सदा स्मरण कर।।
ज्ञानज्योति से अरे निज आतमा प्रगटित किया।
वह क्षीणमोही जीव देखे परमतत्त्व विशेषत:।। २५९ ।।

ॐ ह्रीं अन्तरात्मनः निर्विकल्पस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८५।।

अब यहाँ कहते हैं कि धर्म और शुक्लध्यान रहित श्रमण बहिरात्मा हैं –

(हरिगीत)

हैं धरम एवं शुकल परिणत श्रमण अन्तर आतमा।
पर ध्यान विरहित श्रमण है बहिरातमा यह जान लो।। १५१ ।।

ॐ ह्रीं धर्म–शुक्लध्यानरहितश्रमणस्य बहिरात्मत्वप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८६।।

(वसंततिलका)

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालामेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम्।
अन्तर्बहि: समरसैकरसस्वभावं स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम्।। ७१।।[१]

(मंदाक्रांता)

मुक्त्वा जल्पं भवभयकरं बाह्यमाभ्यन्तरं च
स्मृत्वा नित्यं समरसमयं चिच्चमत्कारमेकम्।
ज्ञानज्योति:प्रकटितनिजाभ्यन्तरांगान्तरात्मा
क्षीणे मोहे किमपि परमं तत्त्वमन्तर्ददर्श।। २५९ ।।

(गाथा)

जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा।
झाणविहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि।। १५१ ।।

---

१. समयसार आत्मख्याति , छन्द ९०

अब इस कलश में भी अन्तरात्मा एवं बहिरात्मा के विषय में कहते हैं –

(वीरछंद)

धरम–शुकलध्यान समरस में जो वर्ते वे सन्त महान।
उनके चरणकमल की शरणा गहें नित्य हम कर सन्मान।।
धरम–शुकल से रहित तुच्छ मुनि कर न सके आतमकल्याण।
संसारी बहिरातम हैं वे उन्हें नहीं निज आतमज्ञान।। २६०।।

ॐ ह्रीं अन्तरात्म–बहिरात्म विशेषस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८७।।

अब इस कलश में कहते हैं कि सब प्रकार के विकल्प हेय हैं –

(वीरछंद)

बहिरातम–अन्तरातम के शुद्धातम में उठें विकल्प।
यह कुबुद्धियों की परिणति है ये मिथ्या संकल्प–विकल्प।।
ये विकल्प भवरमणी को प्रिय इनका है संसार अनन्त।
ये सुबुद्धियों को न इष्ट हैं, उनका आया भव का अन्त।। २६१ ।।

ॐ ह्रीं विकल्पानां हेयत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३८८।।

अब इस गाथा में वीतराग चारित्र में आरूढ़ श्रमण का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

प्रतिक्रमण आदिक क्रिया निश्चयचरित धारक श्रमण ही।
हैं वीतरागी चरण में आरूढ़ केवलि जिन कहें।। १५२ ।।

ॐ ह्रीं वीतरागचारित्रारूढतपोधनस्य स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३८९।।

(वसंततिलका)

कश्चिन्मुनिः सततनिर्मलधर्मशुक्लध्यानामृते समरसे खलु वर्ततेऽसौ।
ताभ्यां विहीनमुनिको बहिरात्मकोऽयं पूर्वोक्तयोगिनमहं शरणं प्रपद्ये।। २६०।।

(अनुष्टुभ्)

बहिरात्मान्तरात्मेति विकल्पः कुधियामयम्।
सुधियां न समस्त्येष संसाररमणीप्रियः।। २६१ ।।

(गाथा)

पडिकमणपहुदिकिरियं कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।
तेण दु विरागचरिए समणो अब्भुट्ठिदो होदि।। १५२ ।।

इस कलश में वीतराग श्रमण की वन्दना करते हैं –

(रोला)

दर्शन अर चारित्र मोह का नाश किया है।
भवसुखकारक कर्म छोड़ संन्यास लिया है।।
मुक्तिमूल मल रहित शील–संयम के धारक।
समरस–अमृतसिन्धु चन्द्र को नमन करूँ मैं।। २६२ ।।

ॐ ह्रीं वीतरागचारित्रारूढतपोधनस्य मुनिवंदनानिरूपकनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३९०।।

इस गाथा में वचनमय प्रतिक्रमणादि का निराकरण करते हैं –

(हरिगीत)

वचनमय प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान अर आलोचना।
बाचिक नियम अर ये सभी स्वाध्याय के ही रूप हैं।। १५३ ।।

ॐ ह्रीं वचनमयप्रतिक्रमणादिनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३९१।।

अब इस कलश में सुख की इच्छा करनेवाले का स्वरूप कहते हैं –

(रोला)

मुक्ति सुन्दरी के दोनों अति पुष्ट स्तनों।
के आलिंगनजन्य सुखों का अभिलाषी जो।।
अरे त्यागकर जिनवाणी को अपने में ही।
थित रहकर वह भव्यजीव जग तृणसम निरखे।। २६३ ।।

ॐ ह्रीं सुखेच्छुकभव्यजीव स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि.. ।।३९२।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा तिष्ठत्यतुलमहिमा नष्टदृक्शीलमोहो
यः संसारोद्भवसुखकरं कर्म मुक्त्वा विमुक्तेः।
मूले शीले मलविरहिते सोऽयमाचारराशिः।
तं वंदेऽहं समरससुधासिन्धुराकाशशांकम् ।। २६२ ।।

(गाथा)

वयणमयं पडिक्कमणं वयणमयं पच्चखाण णियमं च।
आलोयण वयणमयं तं सव्वं जाण सज्झायं।। १५३ ।।

(मंदाक्रांता)

मुक्त्वा भव्यो वचनरचनां सर्वदातः समस्तां
निर्वाणस्त्रीस्तनभरयुगाश्लेषसौख्यस्पृहाढ्यः।
नित्यानंदाद्यतुलमहिमाधारके स्वस्वरूपे
स्थित्वा सर्वं तृणमिव जगज्जालमेको ददर्श।। २६३ ।।

अब मूलाचार से उद्धृत इस गाथा में स्वाध्याय के पाँच भेद बताते हैं –

(हरिगीत)

परीवर्तन वाँचना अर पृच्छना अनुप्रेक्षा।
स्तुति मंगल पूर्वक यह पंचविध स्वाध्याय है।। ७२ ।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायभेदप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३९३।।

इस गाथा में कहते हैं कि निश्चय धर्मध्यान एवं शुक्लध्यानरूप निश्चय प्रतिक्रमण ही करने योग्य है –

(हरिगीत)

यदि शक्य हो तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना चाहिए।
यदि नहीं हो शक्ति तो श्रद्धान ही कर्त्तव्य है।। १५४ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयधर्मशुक्लध्यानस्वरूपप्रतिक्रमणप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३९४।।

अब इस कलश में निज आत्मा के ज्ञान और श्रद्धान की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

पापमय कलिकाल में जिननाथ के भी मार्ग में।
मुक्ति होती है नहीं निजध्यान संभव न लगे।।
तो साधकों को सतत आतमज्ञान करना चाहिए।
निज त्रिकाली आत्म का श्रद्धान करना चाहिए।। २६४ ।।

ॐ ह्रीं निजात्मज्ञानश्रद्धानप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३९५।।

परियट्टणं च वायण पुच्छण अणुपेक्खणा य धम्मकहा।
थुदिमंगलसंजुत्तो पंचविहो होदि सज्झाउ।। ७२ ।।[1]

(गाथा)

जदि सक्कदि कादुं जे पडिक्कमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्तिविहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं।। १५४ ।।

(मंदाक्रांता)

असारे संसारे कलिविलसिते पापबहुले
न मुक्तिर्मार्गेऽस्मिन्नघजिननाथस्य भवति।
अतोऽध्यात्मं ध्यानं कथमिह भवेन्निर्मलधियां
निजात्मश्रद्धानं भवभयहरं स्वीकृतमिदम् ।। २६४ ।।

---

१. श्रीमूलाचार : पंचाचार अधिकार, गाथा २१९

इस गाथा में जिनागम कथित निश्चय प्रतिक्रमणादि करने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

जिनवरकथित जिनसूत्र में प्रतिक्रमण आदिक जो कहे।
कर परीक्षा फिर मौन से निजकार्य करना चाहिए।। १५५।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रतिक्रमणप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३९६।।

अब इन दो कलशों में आत्माराधना की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

पशूवत् अल्पज्ञ जनकृत भयों को परित्याग कर।
शुभाशुभ भववर्धिनी सब वचन रचना त्याग कर।।
कनक–कामिनि मोह तज सुख–शांति पाने के लिए।
निज आतमा में जमे मुक्तीधाम जाने के लिए।। २६५ ।।
कुशल आत्मप्रवाद में परमात्मज्ञानी मुनीजन।
पशुजनों कृत भयंकर भय आत्मबल से त्याग कर।।
सभी लौकिक जल्प तज सुखशांतिदायक आतमा।
को जानकर पहिचानकर ध्यावें सदा निज आतमा।। २६६ ।।

ॐ ह्रीं आत्माराधनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३९७।।

(गाथा)

जिणकहियपरमसुत्ते पडिक्कमणादिय परीक्खऊण फुडं।
मोणव्वएण जोई णियकज्जं साहए णिच्चं।। १५५ ।।

(मंदाक्रांता)

हित्वा भीतिं पशुजनकृतां लौकिकीमात्मवेदी
शस्ताशस्तां वचनरचनां घोरसंसारकर्त्रीम्।
मुक्त्वा मोहं कनकरमणीगोचरं चात्मनात्मा
स्वात्मन्येव स्थितिमविचलां याति मुक्त्यै मुमुक्षुः।। २६५।।

(वसंततिलका)

भीतिं विहाय पशुभिर्मनुजैः कृतां तंमुक्त्वा मुनिः सकललौकिकजल्पजालम्।
आत्मप्रवादकुशलः परमात्मवेदी प्राप्नोति नित्यसुखदं निजतत्त्वमेकम्।। २६६ ।।

इस गाथा में व आगामी कलश में कहते हैं कि स्वमत और परमतवालों के साथ वाद-विवाद में उलझना ठीक नहीं है -

(हरिगीत)

हैं जीव नाना कर्म नाना लब्धि नानाविध कही।
अतएव वर्जित वाद है निज पर समय के साथ भी।। १५६ ।।

संसारकारक भेद जीवों के अनेक प्रकार हैं।
भव जन्मदाता कर्म भी जग में अनेक प्रकार हैं।।
लब्धियाँ भी हैं विविध इस विमल जिनमारगविषें।
स्वपरमत के साथ में न विवाद करना चाहिए।। २६७ ।।

ॐ ह्रीं वादविवाद-परिहारप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३९८।।

आगामी गाथा व कलश में प्राप्त ज्ञाननिधि को गुप्त रहकर भोगने की प्रेरणा देते हैं -

(हरिगीत)

ज्यों निधी पाकर निजवतन में गुप्त रह जन भोगते।
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि परसंग तज के भोगते।। १५७ ।।

पुण्योदयों से प्राप्त कांचन आदि वैभव लोक में।
गुप्त रहकर भोगते जन जिस तरह इस लोक में।।

(गाथा)

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो।। १५६ ।।

(शिखरिणी)

विकल्पो जीवानां भवति बहुधा संसृतिकरः
तथा कर्मानेकविधमपि सदा जन्मजनकम्।
असौ लब्धिर्नाना विमलजिनमार्गे हि विदिता
ततः कर्तव्यं नो स्वपरसमयैर्वादवचनम्।। २६७ ।।

(गाथा)

लद्धणं णिहि एक्को तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।
तह णाणी णाणणिहिं भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं।। १५७ ।।

उस ही तरह सद्ज्ञान की रक्षा करें धर्मातमा।
सब संग त्यागी ज्ञानीजन सद्ज्ञान के आलोक में।। २६८ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञाननिधिभोगप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३९९।।

इस कलश में कहते हैं कि वीतरागी मुनिजनों की दृष्टि में जगत् तृणवत् है –

(वीरछंद)

जनम–मरण का हेतु परिग्रह अरे पूर्णत: उसको छोड़।
हृदय कमल में बुद्धिपूर्वक जगविराग में मन को जोड़।।
परमानन्द निराकुल निज में पुरुषारथ से थिर होकर।
मोह क्षीण होने पर तृणसम हम देखें इस जग की ओर।। २६९ ।।

ॐ ह्रीं जगतः निस्सारताप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४००।।

अब परम आवश्यक अधिकार का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि आज तक जो भी महापुरुष केवली हुए हैं, वे उक्त आवश्यक को प्राप्त कर ही हुए हैं – (हरिगीत)

यों सभी पौराणिक पुरुष आवश्यकों को धारकर।
अप्रमत्तादिक गुणस्थानक पार कर केवलि हुए।। १५८ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयपरमावश्यकमहत्ताप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. ।।४०१।।

(शालिनी)

अस्मिन् लोके लौकिक: कश्चिदेक:
लब्ध्वा पुण्यात्कांचनानां समूहम्।
गूढो भूत्वा वर्तते त्यक्तसंगो
ज्ञानी तद्वत् ज्ञानरक्षां करोति।। २६८ ।।

(मंदाक्रांता)

त्यक्त्वा संगं जननमरणांतकहेतुं समस्तं
कृत्वा बुद्ध्या हृदयकमले पूर्णवैराग्यभावम्।
स्थित्वा शक्त्या सहजपरमानंदनिर्व्यग्ररूपे
क्षीणे मोहे तृणमिव सदा लोकमालोकयाम:।। २६९ ।।

(गाथा)

सव्वे पुराणपुरिसा एवं आवासयं च काऊण।
अपमत्तपहुदिठाणं पडिवज्ज य केवली जादा।। १५८ ।।

अब इस कलश में कहते हैं कि निज आत्मा की आराधना ही सुखकारी है –

(ताटंक)

अरे पुराण पुरुष योगीजन निज आतम आराधन से।
सभी करमरूपी राक्षस के पूरी तरह विराधन से।।
विष्णु–जिष्णु हुए उन्हीं को जो मुमुक्षु पूरे मन से।
नित्य नमन करते वे मुनिजन अघ अटवी को पावक हैं।। २७० ।।

कनक–कामिनी गोचर एवं हेयरूप यह मोह छली।
इसे छोड़कर निर्मल सुख के लिए परम पावन गुरु से।।
धर्म प्राप्त करके हे आत्मन् निरुपम निर्मल गुणधारी।
दिव्यज्ञान वाले आतम में तू प्रवेश कर सत्वर ही।। २७१ ।।

ॐ ह्रीं निजात्माराधनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०२।।

।। शुद्धोपयोग अधिकार ।।

अब इस गाथा में निश्चय–व्यवहारनय की अपेक्षा से स्व–पर का जानना बताया है – (हरिगीत)

निज आतमा को देखें–जानें केवली परमार्थ से।
पर जानते हैं देखते हैं सभी को व्यवहार से।। १५९ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहार स्वपरप्रकाशकस्वरूपप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०३।।

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वात्माराधनया पुराणपुरुषाः सर्वे पुरा योगिनः
प्रध्वस्ताखिलकर्मराक्षसगणा ये विष्णवो जिष्णवः।
तान्नित्यं प्रणमत्यनन्यमनसा मुक्तिस्पृहो निस्पृहः
स स्यात् सर्वजनार्चितांघ्रिकमलः पापाटवीपावकः।। २७० ।।

(मंदाक्रांता)

मुक्त्वा मोहं कनकरमणीगोचरं हेयरूपं
नित्यानन्दं निरुपमगुणालंकृतं दिव्यबोधम्।
चेतः शीघ्रं प्रविश परमात्मानमव्यग्ररूपं
लब्ध्वा धर्मं परमगुरुतः शर्मणे निर्मलाय।। २७१ ।।

(गाथा)

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं।। १५९।।

अब इस कलश में सम्यग्ज्ञानरूप पर्याय को स्व-पर प्रकाशक कहते हैं -

(हरिगीत)

वस्तु के सत्यार्थ निर्णयरूप सम्यग्ज्ञान है।
स्व-पर अर्थों का प्रकाशक वह प्रदीप समान है।।
वह निर्णयात्मक ज्ञान प्रमिति से कथंचित् भिन्न है।
पर आतमा से ज्ञानगुण से तो अखण्ड अभिन्न है।। ७३ ।।

ॐ ह्रीं स्व-परप्रकाशकस्वरूपप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०४।।

इस कलश में सम्यग्ज्ञानज्योति का स्मरण करते हैं -

(रोला)

बंध-छेद से मुक्त हुआ यह शुद्ध आतमा।
निजरस से गंभीर धीर परिपूर्ण ज्ञानमय।।
उदित हुआ है अपनी महिमा में महिमामय।
अचल अनाकुल अज अखंड यह ज्ञानदिवाकर।। ७४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानज्योतिप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।४०५।।

इस कलश में निश्चय-व्यवहारनय की अपेक्षा केवली का स्व-पर को जानना बताते हैं -

---

(अनुष्टुभ्)

यथावद्वस्तुनिर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्म कथंचित् प्रमितेः पृथक्।। ७३।।[१]

(मंदाक्रांता)

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकार-स्वरस-भरतोत्यन्त-गंभी-धीरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि।। ७४ ।।[२]

---

१. महासेन पण्डित देव, ग्रन्थ नाम और छन्द संख्या अनुपलब्ध है।

२. समयसार : आत्मख्याति, छन्द १९२

(हरिगीत)

सौभाग्यशोभा कामपीड़ा शिवश्री के वदन की।
बढ़ावें जो केवली वे जानते सम्पूर्ण जग।।
व्यवहार से परमार्थ से मलक्लेश विरहित केवली।
देवाधिदेव जिनेश केवल स्वात्मा को जानते।। २७२ ।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहार स्वपरप्रकाशकप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०६।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि केवली भगवान के ज्ञान-दर्शन एक साथ होते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों ताप और प्रकाश रवि में एक साथ रहें सदा।
त्यों केवली के ज्ञान-दर्शन एक साथ रहें सदा।। १६० ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः ज्ञानदर्शनयोः यौगपत्यप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०७।।

अब इन दो गाथाओं एवं कलश में कहते हैं कि केवली भगवान के ज्ञान-दर्शन एक साथ होते हैं –

(हरिगीत)

अर्थान्तगत है ज्ञान लोकालोक विस्तृत दृष्टि है।
हैं नष्ट सर्व अनिष्ट एवं इष्ट सब उपलब्ध हैं।। ७५ ।।

(स्रग्धरा)

आत्मा जानाति विश्वं ह्यनवरतमयं केवलज्ञानमूर्तिः
मुक्तिश्रीकामिनीकोमलमुखकमले कामपीडां तनोति।
शोभां सौभाग्यचिह्नां व्यवहरणनयाद्देवदेवो जिनेशः
तेनोच्चैर्निश्चयेन प्रहतमलकलिः स्वस्वरूपं स वेत्ति।। २७२ ।।

(गाथा)

जुगवं वट्टइ णाणं केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयरपयासतावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।। १६० ।।
णाणं अत्थंतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं।। ७५।।[१]

---

१. प्रवचनसार, गाथा-६१

जिनवर कहें छद्मस्थ के हो ज्ञान दर्शनपूर्वक।
पर केवली के साथ हों दोनों सदा यह जानिये।। ७६ ।।

अज्ञानतम को सूर्यसम सम्पूर्ण जग के अधिपति।
हे शान्तिसागर वीतरागी अनूपम सर्वज्ञ जिन।।
संताप और प्रकाश युगपत् सूर्य में हों जिसतरह।
केवली के ज्ञान-दर्शन साथ हों बस उसतरह।। २७३ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः ज्ञानदर्शनयोः यौगपत्यप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०८।।

अब इस कलश में सम्यग्ज्ञान की महिमा बताते हैं –

(हरिगीत)

सद्बोधरूपी नाव से ज्यों भवोदधि को पारकर।
शीघ्रता से शिवपुरी में आप पहुँचे नाथवर।।
मैं आ रहा हूँ उसी पथ से मुक्त होने के लिए।
अन्य कोई शरण जग में दिखाई देता नहीं।। २७४ ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानमहिमानिरूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।४०९।।

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओग्गा।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि।। ७६ ।।[1]

(स्रग्धरा)

वर्तेते ज्ञानदृष्टी भगवति सततं धर्मतीर्थाधिनाथे
सर्वज्ञेऽस्मिन् समंतात् युगपदसदृशे विश्वलोकैकनाथे।
एतावुष्णप्रकाशौ पुनरपि जगतां लोचनं जायतेऽस्मिन्
तेजोराशौ दिनेशे हतनिखिलतमस्तोमके ते तथैवम्।। २७३ ।।

(वसंततिलका)

सद्बोधपोतमधिरुह्य भवाम्बुराशिमुल्लंघ्य शाश्वतपुरी सहसा त्वयाप्ता।
तामेव तेन जिननाथपथाधुनाहं याम्यन्यदस्ति शरणं किमिहोत्तमानाम्।। २७४ ।।

---

१. बृहदद्रव्यसंग्रह, गाथा ४४

अब इन दो कलशों में जिनदेव का स्वरूप कहते हैं –

(हरिगीत)

आप केवलभानु जिन इस जगत में जयवंत हैं।
समरसमयी निर्देह सुखदा शिवप्रिया के कंत हैं।।
रे शिवप्रिया के मुखकमल पर कांति फैलाते सदा।
सुख नहीं दे निजप्रिया को है कौन ऐसा जगत में।। २७५ ।।

(दोहा)

अरे भ्रमर की भांति तुम, शिवकामिनि लवलीन।
अद्वितीय आत्मीक सुख, पाया जिन अमलीन।। २७६ ।।

ॐ ह्रीं जिनदेवस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।४१०।।

अब कहते हैं कि यदि कोई ऐसा माने कि ज्ञान सर्वथा परप्रकाशक ही है और दर्शन स्वप्रकाशक तो उसका यह कथन सत्य नहीं है –

(हरिगीत)

परप्रकाशक ज्ञान दर्शन स्वप्रकाशक इसतरह।
स्वपरप्रकाशक आत्मा है मानते हो तुम यदि।। १६१ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः ज्ञान-दर्शनयोः यथार्थस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४११।।

(मंदाक्रांता)

एको देवः स जयति जिनः केवलज्ञानभानुः
कामं कान्तिं वदनकमले संतनोत्येव कांचित्।
मुक्तेस्तस्याः समरसमयानंगसौख्यप्रदायाः
को नालं शं दिशतुमनिशं प्रेमभूमेः प्रियायाः।। २७५ ।।

(अनुष्टुभ्)

जिनेन्द्रो मुक्तिकामिन्याः मुखपद्मे जगाम सः।
अलिलीलां पुनः काममनङ्गसुखमद्वयम्।। २७६ ।।

(गाथा)

णाणं परप्पयासं दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि।। १६१।।

इन दो कलशों में कहते हैं कि ज्ञान, दर्शन और आत्मा स्व-पर प्रकाशक है -

(मनहरणकवित्त)

जिसने किये हैं निर्मूल घातिकर्म सब।
अनंत सुख वीर्य दर्श ज्ञान धारी आतमा।।
भूत भावी वर्तमान पर्याय युक्त सब।
द्रव्य जाने एक ही समय में शुद्धातमा।।
मोह का अभाव पररूप परिणमें नहीं।
सभी ज्ञेय पीके बैठा ज्ञानमूर्ति आतमा।।
पृथक्-पृथक् सब जानते हुए भी ये।
सदा मुक्त रहें अरहंत परमातमा।। ७७।।

ज्ञान इक सहज परमातमा को जानकर।
लोकालोक ज्ञेय के समूह को है जानता।
ज्ञान के समान दर्शन भी तो क्षायिक है।
वह भी स्वपर को है साक्षात् जानता।।
ज्ञान-दर्शन द्वारा भगवान आतमा।
स्व-पर सभी ज्ञेयराशि को है जानता।।
ऐसे वीतरागी सर्वज्ञ परमातमा।
स्वपरप्रकाशी निज भाव को प्रकाशता।। २७७ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः ज्ञान-दर्शनयोः स्व-परप्रकाशकत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४१२।।

(स्रग्धरा)

जानन्नप्येष विश्वं युगपदपि भवद्भाविभूतं समस्तं
मोहाभावाद्यदात्मा परिणमति परं नैव निर्लूनकर्मा।
तेनास्ते मुक्त एव प्रसभविकसितज्ञप्तिविस्तारपीत
ज्ञेयाकारां त्रिलोकीं पृथगपृथगथ द्योतयन् ज्ञानमूर्तिः।। ७७ ।।[१]

(मंदाक्रांता)

ज्ञानं तावत् सहजपरमात्मानमेकं विदित्वा
लोकालोकौ प्रकटयति वा तद्वतं ज्ञेयजालम्।
दृष्टिः साक्षात् स्वपरविषया क्षायिकी नित्यशुद्धा
ताभ्यां देवः स्वपरविषयं बोधति ज्ञेयराशिम्।। २७७ ।।

---

१. प्रवचनसार : तत्त्वप्रदीपिका, छन्द-४

अब कहते हैं कि यदि कोई ऐसा माने कि ज्ञान सर्वथा परप्रकाशक ही है और दर्शन स्वप्रकाशक तो उसका यह कथन सत्य नहीं है –

(हरिगीत)

पर का प्रकाशक ज्ञान तो दृग भिन्न होगा ज्ञान से।
पर को न देखे दर्श – ऐसा कहा तुमने पूर्व में।। १६२ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः ज्ञान-दर्शनयोः यथार्थस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४१३।।

अब श्री महासेन पण्डितदेव के द्वारा रचित कलश को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि आत्मा ज्ञान से भिन्नाभिन्न है –

(कुण्डलिया)

अरे ज्ञान से आत्मा, नहीं सर्वथा भिन्न।
अर अभिन्न भी है नहीं, यह है भिन्नाभिन्न।।
यह है भिन्नाभिन्न कथंचित् नहीं सर्वथा।
अरे कथंचित् भिन्न अभिन्न भी किसी अपेक्षा।।
जैनधर्म में नहीं सर्वथा कुछ भी होता।
पूर्वापर जो ज्ञान आतमा वह ही होता।। ७८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः ज्ञानाद् भिन्ना-भिन्नस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४१४।।

इस कलश में निश्चय-व्यवहारनय की अपेक्षा आत्मा का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

यह आतमा न ज्ञान है दर्शन नहीं है आतमा।
रे स्वपर जाननहार दर्शनज्ञानमय है आतमा।।

(गाथा)

णाणं परप्पयासं तइया णाणेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।। १६२।।
ज्ञानाद्भिन्नो न नाभिन्नो भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः।। ७८ ।।[1]

---

१. महासेनदेव पण्डित द्वारा रचित छन्द, ग्रन्थ संख्या एवं छंद संख्या अनुपलब्ध है।

इस अघविनाशक आतमा अर ज्ञान–दर्शन में सदा।
भेद है नामादि से परमार्थ से अन्तर नहीं।। २७८ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः भेदाभेदस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४१५।।

अब आत्मा एकान्त से परप्रकाशक है – इस बात का खण्डन करते हैं –

(हरिगीत)

पर का प्रकाशक आत्म तो दृग भिन्न होगा आत्म से।
पर को न देखे दर्श – ऐसा कहा तुमने पूर्व में।। १६३ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः एकान्ततः परप्रकाशकनिषेधक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४१६।।

इस कलश में कहते हैं कि आत्मा में लीन होनेवाले धर्मात्मा मुक्ति को प्राप्त करते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रियविषयहिमरवि सम्यग्दृष्टि निर्मल आतमा।
रे ज्ञान–दर्शन धर्म से संयुक्त धर्मी आतमा।।
में अचलता को प्राप्त कर जो मुक्तिरमणी को वरें।
चिरकालतक वे जीव सहजानन्द में स्थित रहें।। २७९ ।।

ॐ ह्रीं आत्मलीनतायाः फलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४१७।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा ज्ञानं भवति न हि वा दर्शनं चैव तद्वत्
ताभ्यां युक्तः स्वपरविषयं वेत्ति पश्यत्यवश्यम्।
संज्ञाभेदादघकुलहरे चात्मनि ज्ञानदृष्ट्योः
भेदो जातो न खलु परमार्थेन बह्वायुष्णवत्सः।। २७८ ।।

(गाथा)

अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।। १६३ ।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा धर्मी भवति सुतरां ज्ञानदृग्धर्मयुक्तः
तस्मिन्नेव स्थितिमविचलां तां परिप्राप्य नित्यम्।
सम्यग्दृष्टिर्निखिलकरणग्रामनीहारभास्वान्
मुक्तिं याति स्फुटितसहजावस्थया संस्थितां ताम्।। २७९ ।।

अब कहते हैं कि व्यवहारनय से ज्ञान और आत्मा के समान दर्शन भी परप्रकाशक है – (हरिगीत)

परप्रकाशक ज्ञान सम दर्शन कहा व्यवहार से।
अर परप्रकाशक आत्म सम दर्शन कहा व्यवहार से।। १६४ ।।

ॐ ह्रीं दर्शनस्य परप्रकाशकत्वप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४१८।।

अब दो कलशों में जिनदेव की स्तुति करते हैं –

(हरिगीत)

अरे जिनके ज्ञान में सब द्रव्य लोकालोक के।
इसतरह प्रतिबिंबित हुए जैसे गुंथे हों परस्पर।।
सुरपती नरपति मुकुटमणि की माल से अर्चित चरण।
जयवंत हैं इस जगत में निर्दोष जिनवर के वचन।। ७९ ।।

ज्ञान का घनपिण्ड आतम अरे निर्मल दृष्टि से।
है देखता सब लोक को इस लोक में व्यवहार से।।
मूर्त और अमूर्त सब तत्त्वार्थ को है जानता।
वह आतमा शिववल्लभा का परम वल्लभ जानिये।। २८० ।।

ॐ ह्रीं जिनदेवस्तुतिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४१९।।

(गाथा)

णाणं परप्पयासं ववहारणयेण दंसणं तम्हा।
अप्पा परप्पयासो ववहारणयेण दंसणं तम्हा।। १६४ ।।

(मालिनी)

जयति विजितदोषोऽमर्त्यमर्त्येन्द्रमौलि–
प्रविलसदुरुमालाभ्यार्चितांघ्रिर्जिनेन्द्रः।
त्रिजगदजगती यस्येदृशौ व्यश्नुवाते
सममिव विषयेष्वन्योन्यवृत्तिं निषेद्धुम्।। ७९ ।।[१]

(मालिनी)

व्यवहरणनयेन ज्ञानपुंजोऽयमात्मा
प्रकटतरसुदृष्टिः सर्वलोकप्रदर्शी।
विदितसकलमूर्तामूर्ततत्त्वार्थसार्थः
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। २८०।।

---

१. श्रुतबिन्दु, छन्द संख्या अनुपलब्ध है।

अब इस गाथा में पुनः कहते हैं कि व्यवहारनय से ज्ञान और आत्मा के समान दर्शन भी परप्रकाशक है –

(हरिगीत)

निजप्रकाशक ज्ञान सम दर्शन कहा परमार्थ से।
अर निजप्रकाशक आत्म सम दर्शन कहा परमार्थ से।। १६५ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानदर्शनयोः स्वपरप्रकाशकत्वप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२०।।

इस कलश में कहते हैं कि स्व-परप्रकाशक ज्ञान-दर्शन ही आत्मा हैं –

(हरिगीत)

परमार्थ से यह निजप्रकाशक ज्ञान ही है आतमा।
बाह्य आलम्बन रहित जो दृष्टि उसमय आतमा।।
स्वरस के विस्तार से परिपूर्ण पुण्य-पुराण यह।
निर्विकल्पक महिम एकाकार नित निज में रहे।। २८१ ।।

ॐ ह्रीं स्व-परप्रकाशकज्ञान-दर्शनमेवात्मा इतिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२१।।

अब कहते हैं कि केवली भगवान आत्मा को ही देखते हैं, लोकालोक को नहीं – इस कथन में कोई दोष नहीं है –

(हरिगीत)

देखे-जाने स्वयं को पर को नहीं जिनकेवली।
यदि कहे कोई इसतरह उसमें कहो है दोष क्या?।। १६६ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः स्वप्रकाशकत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि...।।४२२।।

(गाथा)

णाणं अप्पयासं णिच्छय्यणयएण दंसणं तम्हा।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।। १६५।।

(मंदाक्रांता)

आत्मा ज्ञानं भवति नियतं स्वप्रकाशात्मकं या
दृष्टिः साक्षात् प्रहतबहिरालंबना सापि चैषः।
एकाकारस्वरसविसरापूर्णपुण्यः पुराणः
स्वस्मिन्नित्यं नियतवसतिर्निर्विकल्पे महिम्नि।। २८१ ।।

(गाथा)

अप्पसरूवं पेच्छदि लोयालोयं ण केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ।। १६६।।

इस कलश में भी यही कहते हैं कि आत्मा स्वयं को ही देखता-जानता है –

(हरिगीत)

अत्यन्त अविचल और अन्तर्मग्न नित गंभीर है।
शुद्धि का आवास महिमावंत जो अति धीर है।।
व्यवहार के विस्तार से है पार जो परमातमा।
उस सहज स्वातमराम को नित देखता यह आतमा।। २८२ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः स्वप्रकाशकस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि..।।४२३।।

अब इस गाथा में केवलज्ञान का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

चेतन-अचेतन मूर्त और अमूर्त सब जग जानता।
वह ज्ञान है प्रत्यक्ष अर उसको अतीन्द्रिय जानना।। १६७ ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४२४।।

प्रवचनसार की उद्धृत गाथा एवं आगामी कलश में कहते हैं कि केवलज्ञान समस्त पदार्थों को जानता है –

(हरिगीत)

अमूर्त को अर मूर्त में भी अतीन्द्रिय प्रच्छन्न को।
स्व-पर को सर्वार्थ को जाने वही प्रत्यक्ष है।। ८० ।।

(मंदाक्रांता)

पश्यत्यात्मा सहजपरमात्मानमेकं विशुद्धं
स्वान्तःशुद्ध्यावसथमहिमाधारमत्यन्तधीरम्।
स्वात्मन्युच्चैरविचलतया सर्वदान्तर्निमग्नं
तस्मिन्नैव प्रकृतिमहति व्यावहारप्रपंचः।। २८२ ।।

(गाथा)

मुत्तममुत्तं दव्वं चेयणमियरं सगं च सव्वं च।
पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होइ।। १६७ ।।
जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं।
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं।। ८० ।।[1]

---

१. प्रवचनसार गाथा ४४

अनंत शाश्वतधाम त्रिभुवनगुरु लोकालोक के।
रे स्व-पर चेतन-अचेतन सर्वार्थ जाने पूर्णत:।।
अरे केवलज्ञान जिनका तीसरा जो नेत्र है।
विदित महिमा उसी से वे तीर्थनाथ जिनेन्द्र हैं।। २८३ ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानस्य सर्वप्रकाशकत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि...।।४२५।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि केवलदर्शन के अभाव में केवलज्ञान संभव नहीं है -

(हरिगीत)

विधिध गुण पर्याय युत वस्तु न जाने जीव जो।
परोक्षदृष्टि जीव वे जिनवर कहें इस लोक में।। १६८ ।।

ॐ ह्रीं केवलदर्शनाभावे सर्वज्ञत्वाभावप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२६।।

इस कलश में केवलज्ञान का स्वरूप बताते हैं -

(हरिगीत)

'मैं स्वयं सर्वज्ञ हूँ' ह्न इस मान्यता से ग्रस्त जो।
पर नहीं देखे जगतत्रय त्रिकाल को इक समय में।।
प्रत्यक्षदर्शन है नहीं ज्ञानाभिमानी जीव को।
उस जड़ात्मन को जगत में सर्वज्ञता हो किसतरह? ।। २८४ ।।

ॐ ह्रीं प्रत्यक्षज्ञानाभावे सर्वज्ञत्वाभावप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२७।।

(मंदाक्रांता)

सम्यग्वर्ती त्रिभुवनगुरु: शाश्वतानन्तधामा
लोकालोकौ स्वपरमखिलं चेतनाचेतनं च।
तार्तीयं यन्नयनमपरं केवलज्ञानसंज्ञं
तेनैवायं विदितमहिमा तीर्थनाथो जिनेन्द्र:।। २८३ ।।

(गाथा)

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जाएण संजुत्तं।
जो ण य पेच्छइ सम्मं परोक्खदिट्ठी हवे तस्स।। १६८।।

(वसंततिलका)

यो नैव पश्यति जगत्त्रयमेकदैव कालत्रयं च तरसा सकलज्ञमानी।
प्रत्यक्षदृष्टिरतुला न हि तस्य नित्यं सर्वज्ञता कथमिहास्य जडात्मन: स्यात्।। २८४ ।।

अब इस गाथा में व्यवहारनय सम्बन्धी कथन को निर्दोष बताते हैं –

(हरिगीत)

सब विश्व देखें केवली निज आत्मा देखें नहीं।
यदि कहे कोई इसतरह उसमें कहो है दोष क्या? ।। १६९ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारकथनस्य निर्दोषत्वप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२८।।

अब बृहद्स्वयंभूस्तोत्र से उद्धृत कलश द्वारा सर्वज्ञता के विषय में कहते हैं – (हरिगीत)

उत्पादव्ययध्रुवयुत जगत यह वचन हे वदताम्बर: ।
सर्वज्ञता का चिह्न है हे सर्वदर्शि जिनेश्वर: ।। ८१ ।।

ॐ ह्रीं सर्वज्ञत्वमहिमाप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४२९।।

इस कलश में व्यवहारनय सम्बन्धी कथन को निर्दोष बताते हैं –

(हरिगीत)

रे केवली भगवान जाने पूर्ण लोक-अलोक को।
पर अनघ निजसुखलीन स्वातम को नहीं वे जानते।।
यदि कोई मुनिवर यों कहे व्यवहार से इस लोक में।
उन्हें कोई दोष न बोलो उन्हें क्या दोष है।। २८५ ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारकथनस्य निर्दोषत्वप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३०।।

(गाथा)

लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ।। १६९ ।।

(अपरवक्त्र)

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।
इति जिन सकलज्ञलांछनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते।। ८१ ।।[1]

(वसंततिलका)

जानाति लोकमखिलं खलु तीर्थनाथ: स्वात्मानमेकमनघं निजसौख्यनिष्ठम्।
नो वेत्ति सोऽयमिति तं व्यवहारमार्गाद् वक्तीति कोऽपि मुनिपो न च तस्य दोष: ।। २८५ ।।

---

१. बृहत्स्वयंभूस्तोत्र : भगवान मुनिसुव्रतनाथ की स्तुति, छन्द-११४

अब इस गाथा में ज्ञान को जीवस्वरूप सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

ज्ञान जीवस्वरूप इससे जानता है जीव को।
जीव से हो भिन्न वह यदि नहीं जाने जीव को।। १७० ।।

ॐ ह्रीं जीवस्य ज्ञानस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३१।।

गुणभद्र स्वामी द्वारा रचित इस कलश में ज्ञान की भावना भाने की प्रेरणा देते हैं –

(दोहा)

ज्ञानस्वभावी आतमा स्वभावप्राप्ति है इष्ट।
अतः मुमुक्षु जीव को ज्ञानभावना इष्ट।। ८२ ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानस्वभावप्राप्ति-भावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३२।।

अब आगे दो कलशों में कहते हैं कि आत्मा और ज्ञान अभेद हैं –

(रोला)

शुद्धजीव तो एकमात्र है ज्ञानस्वरूपी।
अतः आतमा निश्चित जाने निज आतम को।।
यदि साधक न जाने स्वातम को प्रत्यक्ष तो।
ज्ञान सिद्ध हो भिन्न निजातम से हे भगवन्।। २८६ ।।

(गाथा)

णाणं जीवसरूवं तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।
अप्पाणं ण वि जाणदि अप्पादो होदि विदिरित्तं।। १७०।।

(अनुष्टुभ्)

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।
तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज्ज्ञानभावनाम्।। ८२।।[१]

(मंदाक्रांता)

ज्ञानं तावद्भवति सुतरां शुद्धजीवस्वरूपं
स्वात्मात्मानं नियतमधुना तेन जानाति चैकम्।
तच्च ज्ञानं स्फुटितसहजावस्थयात्मानमारात्
नो जानाति स्फुटमविचलाद्भिन्नमात्मस्वरूपात्।। २८६।।

---

१. आत्मानुशासन, छन्द १७४

(दोहा)

ज्ञान अभिन है आत्म से अतः जाने निज आत्म।
भिन्न सिद्ध हो वह यदि न जाने निज आत्म।। ८३ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानयोःअभेदत्वप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि...।।४३३।।

अब इस गाथा में आत्मा और ज्ञान का अभेदपना बताते हैं –

(हरिगीत)

आत्मा है ज्ञान एवं ज्ञान आतम जानिये।
संदेह न बस इसलिए निजपरप्रकाशक ज्ञान दृग।। १७१ ।।

ॐ ह्रीं आत्मज्ञानयोः अभेदत्वप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि..।।४३४।।

अब इस कलश में कहते हैं कि आत्मा तथा ज्ञान और दर्शन एक हैं –

(सोरठा)

आतम दर्शन–ज्ञान दर्श–ज्ञान है आतमा।
यह सिद्धान्त महान स्वपरप्रकाशे आतमा।। २८७ ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः ज्ञानस्य दर्शनस्य च एकत्वप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३५।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि सर्वज्ञ–वीतरागी भगवान के इच्छा का अभाव है –

णाणं अव्विदिरित्तं जीवादो तेण अप्पगं मुणइ।
जदि अप्पगं ण जाणइ भिण्णं तं होदि जीवादो।। ८३।।[१]

(गाथा)

अप्पाणं विणु णाणं णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।
तम्हा सपरपयासं णाणं तह दंसणं होदि।। १७१ ।।

(अनुष्टुभ्)

आत्मानं ज्ञानदृग्रूपं विद्धि दृग्ज्ञानमात्मकं।
स्वं परं चेति यत्तत्त्वमात्मा द्योतयति स्फुटम्।। २८७ ।।

---

१. गाथा कहाँ की है, इसका उल्लेख नहीं है।

(हरिगीत)

जानते अर देखते इच्छा सहित वर्तन नहीं।
बस इसलिए हैं अबंधक अर केवली भगवान वे।। १७२ ।।

ॐ ह्रीं सर्वज्ञस्य इच्छायाः अभावत्वप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३६।।

इस गाथा में बताते हैं कि पदार्थों को जानने के बाद भी सर्वज्ञ को बन्ध क्यों नहीं –

(हरिगीत)

सर्वार्थ जाने जीव पर उनरूप न परिणमित हो।
बस इसलिए है अबंधक ना ग्रहे ना उत्पन्न हो।। ८४।।

ॐ ह्रीं सर्वज्ञस्य बन्धाभावप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४३७।।

इस कलश में कहते हैं कि सर्वज्ञदेव सहज ज्ञाता-दृष्टा हैं –

(हरिगीत)

सहज महिमावंत जिनवर लोक रूपी भवन में।
थित सर्व अर्थों को अरे रे देखते अर जानते।।
निर्मोहता से सभी को नित ग्रहण करते हैं नहीं।
कलिमल रहित सद्ज्ञान से वे लोक के साक्षी रहें।। २८८ ।।

ॐ ह्रीं सहजज्ञाता-दृष्टास्वरूपप्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३८।।

(गाथा)

जाणंतो पस्संतो ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।
केवलिणाणी तम्हा तेण दु सोऽबंधगो भणिदो।। १७२।।

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो।। ८४ ।।[1]

(मंदाक्रांता)

जानन् सर्वं भुवनभवनाभ्यन्तरस्थं पदार्थं
पश्यन् तद्वत् सहजमहिमा देवदेवो जिनेशः।
मोहाभावादपरमखिलं नैव गृह्णाति नित्यं
ज्ञानज्योतिर्हतमलकलिः सर्वलोकैकसाक्षी।। २८८ ।।

---

१. प्रवचनसार, गाथा ५२

अब इन दो गाथाओं व एक कलश में कहते हैं कि इच्छा का अभाव होने से केवली को बन्ध नहीं होता –

(हरिगीत)

बंध कारण जीव के परिणामपूर्वक वचन हैं।
परिणाम विरहित वचन केवलिज्ञानियों को बंध न।। १७३ ।।
ईहापूर्वक वचन ही हों बंधकारण जीव को।
ईहा रहित हैं वचन केवलज्ञानियों को बंध न।। १७४ ।।

ईहापूर्वक वचनरचनारूप न बस इसलिए।
प्रकट महिमावंत जिन सब लोक के भरतार हैं।।
निर्मोहता से उन्हें पूरण राग-द्वेषाभाव है।
द्रव्य एवं भावमय कुछ बंध होगा किस तरह?।। २८९ ।।

ॐ ह्रीं इच्छाभावे केवलिनः बन्धनिषेधस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३९।।

इन दो कलशों में केवली भगवान का स्वरूप बताते हैं –

(हरिगीत)

अरे जिनके ज्ञान में सब अर्थ हों त्रयलोक के।
त्रयलोकगुरु चतुकर्मनाशक देव हैं त्रयलोक के।।

(गाथा)

परिणामपुव्ववयणं जीवस्स य बंधकारणं होइ।
परिणामरहियवयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।। १७३।।
ईहापुव्वं वयणं जीवस्स स बंधकारणं होइ।
ईहारहियं वयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।। १७४।।

(मंदाक्रांता)

ईहापूर्वं वचनरचनारूपमत्रास्ति नैव
तस्मादेषः प्रकटमहिमा विश्वलोकैकभर्ता।
अस्मिन् बंधःकथमिव भवेद् द्रव्यभावात्मकोऽयं
मोहाभावान्न खलु निखिलं रागरोषादिजालम्।। २८९।।

न बंध है न मोक्ष है न मूर्छा न चेतना।
वे नित्य निज सामान्य में ही पूर्णत: लवलीन हैं।। २९० ।।

धर्म एवं कर्म का परपंच न जिनदेव में।
रे रागद्वेषाभाव से वे अतुल महिमावंत हैं।।
वीतरागी शोभते श्रीमान् निज सुख लीन हैं।
मुक्तिरमणी कंत ज्ञानज्योति से हैं छा गये।। २९१ ।।

ॐ ह्रीं केवलीमहिमा प्रतिपादक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४०।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि केवली भगवान के भाव मन नहीं होता –

(हरिगीत)

खड़े रहना बैठना चलना न ईहापूर्वक।
बंधन नहीं अर मोहवश संसारी बंधन में पड़े।। १७५ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः भावमनसः अभाव-प्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४४१।।

अब प्रवचनसार की उद्धृत गाथा में कहते हैं कि अरहन्त भगवान की समस्त क्रियायें स्वाभाविकरूप से होती हैं –

(मंदाक्रांता)

एको देवस्त्रिभुवनगुरुर्नष्टकर्माष्टकार्ध:
सद्बोधस्थं भुवनमखिलं तद्गतं वस्तुजालम्।
आरातीये भगवति जिने नैव बंधो न मोक्ष:
तस्मिन् काचिन्न भवति पुनर्मूर्च्छना चेतना च।। २९०।।
न ह्येतस्मिन् भगवति जिने धर्मकर्मप्रपंचो
रागाभावादतुलमहिमा राजते वीतराग:।
एष: श्रीमान स्वसुखनिरत: सिद्धिसीमन्तिनीशो
ज्ञानज्योतिश्छुरितभुवनाभोगभाग: समन्तात्।। २९१।।

(गाथा)

ठाणणिसेज्जविहारा ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।
तम्हा ण होइ बंधो साक्खवट्ठं मोहणीयस्स।। १७५ ।।

(हरिगीत)

यत्न बिन ज्यों नारियों में सहज मायाचार त्यों।
हो विहार उठना-बैठना अर दिव्यध्वनि अरहंत के।। ८५ ।।

ॐ ह्रीं अर्हतः स्वाभाविक क्रियाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४२।।

इस कलश में कहते हैं कि अरहन्त के भाव मन का अभाव होने से बन्ध नहीं होता -

(हरिगीत)

इन्द्र आसन कंप कारण महत केवलज्ञानमय।
शिवप्रियामुखपद्मरवि सद्धर्म के रक्षामणि।।
सर्ववर्तन भले हो पर मन नहीं है सर्वथा।
पापाटवीपावक जिनेश्वर अगम्य महिमावंत हैं।। २९२ ।।

ॐ ह्रीं अरहन्तस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४३।।

अब इस गाथा में यह बताते हैं कि केवली भगवान एक समय में सिद्ध शिला पर विराजमान हो जाते हैं -

(हरिगीत)

फिर आयुक्षय से शेष प्रकृति नष्ट होती पूर्णतः।
फिर शीघ्र ही इक समय में लोकाग्रथित हों केवली।। १७६ ।।

ॐ ह्रीं केवलिनः स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४४।।

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारो व्व इत्थीणं।। ८५ ।।[1]

(शार्दूलविक्रीडित)

देवेन्द्रासनकंपकारणमहत्कैवल्यबोधोदये
मुक्तिश्रीललनामुखाम्बुजरवेः सद्धर्मरक्षामणेः।
सर्वं वर्तनमस्ति चेन्न च मनः सर्वं पुराणस्य तत्
सोऽयं नन्वपरिप्रमेयमहिमा पापाटवीपावकः।। २९२ ।।

(गाथा)

आउस्स खयेण पुणो णिण्णासो होइ सेसपयडीणं।
पच्छा पावइ सिग्घं लोयग्गं समयमेत्तेण।। १७६ ।।

---

१. प्रवचनसार : गाथा-४४

इन कलशों में सिद्धों का स्वरूप बताते हैं –

(दोहा)

छह अपक्रम से सहित हैं जो संसारी जीव।
उनसे लक्षण भिन्न हैं सदा सुखी सिध जीव।। २९३ ।।

(वीर)

देव और विद्याधरगण से नहीं वंद्य प्रत्यक्ष जहान।
बंध छेद से अतुलित महिमा धारक हैं जो सिद्ध महान।।
अरे लोक के अग्रभाग में स्थित हैं व्यवहार बखान।
रहें सदा अविचल अपने में यह है निश्चय का व्याख्यान।। २९४ ।।

(दोहा)

पंचपरावर्तन रहित पंच भवों से पार।
पंचसिद्ध बंदौ सदा पंचमोक्षदातार।। २९५ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४४५।।

अब इस गाथा में कारण परमतत्त्व का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

शुद्ध अक्षय करम विरहित जनम मरण जरा रहित।
ज्ञानादिमय अविनाशि चिन्मय आतमा अक्षेद्य है।। १७७ ।।

ॐ ह्रीं कारणपरमतत्त्वस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४६।।

(अनुष्टुभ्)

षट्कापक्रमयुक्तानां भविनां लक्षणात् पृथक्।
सिद्धानां लक्षणं यस्मादूर्ध्वगास्ते सदा शिवाः।। २९३।।

(मंदाक्रांता)

बन्धच्छेदादतुलमहिमा देवविद्याधराणां
प्रत्यक्षोऽद्य स्तवनविषयो नैव सिद्धः प्रसिद्धः।
लोकस्याग्रे व्यवहरणतः संस्थितो देवदेवः
स्वात्मन्युच्चैरविचलतया निश्चयेनैवमास्ते।। २९४ ।।

(अनुष्टुभ्)

पंचसंसारनिर्मुक्तान् पंचसंसारमुक्तये।
पंचसिद्धानहं वंदे पंचमोक्षफलप्रदान्।। २९५।।

(गाथा)

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं।। १७७।।

इस कलश में आत्मतत्त्व को भजने की प्रेरणा देते हैं –

(वीर)

राग–द्वेष के द्वन्द्वों में जो नहीं रहे अघनाशक है।
अखिल पापवन के समूह को दावानल सम दाहक है।।
अविचल और अखंड ज्ञानमय दिव्य सुखामृत धारक है।
अरे भजो निज आतम को जो विमलबोध का दायक है।। २९६ ।।

ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वभजनप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४४७।।

इस गाथा में भी कारण परमतत्त्व का स्वरूप समझाते हैं –

(हरिगीत)

पुणपापविरहित नित्य अनुपम अचल अव्याबाध है।
अनालम्ब अतीन्द्रियी पुनरागमन से रहित है।। १७८ ।।

ॐ ह्रीं कारणपरमतत्त्वस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४८।।

इस कलश में आचार्य अमृतचन्द्रदेव संसारी जीवों को सम्बोधित करते हैं –

(हरिगीत)

अपदपद में मत्त नित अन्धे जगत के प्राणियों।
यह पद तुम्हारा पद नहीं निज जानकर क्यों सो रहे।।
जागो इधर आओ रहो नित मगन परमानंद में।
हो परमपदमय तुम स्वयं तुम स्वयं हो चैतन्यमय।। ८६।।

ॐ ह्रीं निजपदाश्रयप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४९।।

(मालिनी)

अविचलितमखंडज्ञानमद्वन्द्वनिष्ठं
निखिलदुरितदुर्गव्रातदावाग्निरूपम्।
भज भजसि निजोत्थं दिव्यशर्मामृतं त्वं
सकलविमलबोधस्ते भवत्येव तस्मात्।। २९६।।

(गाथा)

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं।
पुणरागमणविरहियं णिच्चं अचलं अणालंबं।। १७८।।

(मंदाक्रांता)

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमंधाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति।। ८६ ।।[१]

---

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द १३८

इस कलश में परमपंचमभाव का स्वरूप कहते हैं –

(वीर)

भाव पाँच हैं उनमें पंचम परमभाव सुखदायक है।
सम्यक् श्रद्धा धारकगोचर भवकारण का नाशक है।।
परमशरण है इस कलियुग में एकमात्र अघनाशक है।
इसे जान ध्यावें जो मुनि वे सघन पापवन पावक हैं।। २९७ ।।

ॐ ह्रीं परमपंचभावस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५०।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि निर्वाण का कारण होने से वह परमतत्त्व ही निर्वाण है – (हरिगीत)

न जनम है न मरण है सुख–दुख नहीं पीड़ा नहीं।
बाधा नहीं वह दशा ही निर्बाध है निर्वाण है।। १७९ ।।

ॐ ह्रीं कारणपरमतत्त्वमेव निर्वाणमितिप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४५१।।

इस कलश में कारणपरमात्मा एवं कार्यपरमात्मा को नमन करते हैं –

(वीर)

भव सुख–दुख अर जनम–मरण की पीड़ा नहीं रंच जिनके।
शत इन्द्रों से वंदित निर्मल अद्भुत चरण कमल जिनके।।
उन निर्बाध परम आतम को काम कामना को तजकर।
नमन करूँ स्तवन करूँ मैं सम्यक्भाव भाव भाकर।। २९८।।

ॐ ह्रीं कारण–कार्यपरमात्मानमनप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि...।।४५२।।

(शार्दूलविक्रीडित)

भावाः पंच भवन्ति येषु सततं भावः परः पंचमः
स्थायी संसृतिनाशकारणमयं सम्यग्दृशां गोचरः।
तं मुक्त्वाखिलरागरोषनिकरं बुद्ध्वा पुनर्बुद्धिमान्
एको भाति कलौ युगे मुनिपतिः पापाटवीपावकः।। २९७ ।।

(गाथा)

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। १७९।।

(मालिनी)

भवभवसुखदुःखं विद्यते नैव बाधा
जननमरणपीडा नास्ति यस्येह नित्यम्।
तमहमभिनमामि स्तौमि संभावयामि
स्मरसुखविमुखस्सन् मुक्तिसौख्याय नित्यम्।। २९८ ।।

इस कलशा में कार्य परमात्मा को नमस्कार करते हैं –

(दोहा)

आत्मसाधना से रहित है अपराधी जीव।
नमूँ परम आनन्दघर आतमराम सदीव।। २९९ ।।

ॐ ह्रीं कार्यपरमात्मानमनप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५३।।

अब इस गाथा में भी उसी निर्वाण के योग्य परमतत्त्व का स्वरूप समझाया जा रहा है –

(हरिगीत)

इन्द्रियाँ उपसर्ग एवं मोह विस्मय भी नहीं।
निद्रा तृषा अर क्षुधा बाधा है नहीं निर्वाण में।। १८० ।।

ॐ ह्रीं परमतत्त्वस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५४।।

इस कलशा में भी परमतत्त्व का स्वरूप कहते हैं –

(रोला)

जनम जरा ज्वर मृत्यु भी है पास न जिसके।
गती–अगति भी नाहिं है उस परमतत्त्व को।।
गुरुचरणों की सेवा से निर्मल चित्तवाले।
तन में रहकर भी अपने में पा लेते हैं।। ८७ ।।

ॐ ह्रीं परमतत्त्वस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५५।।

(अनुष्टुभ्)

आत्माराधनया हीनः सापराध इति स्मृतः।
अहमात्मानमानन्दमंदिरं नौमि नित्यशः।। २९९।।

(गाथा)

णवि इंदिय उवसग्गा णवि मोहो विम्हिओ ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। १८० ।।

(मालिनी)

ज्वरजननजराणां वेदना यत्र नास्ति
परिभवति न मृत्युर्नागतिर्नो गतिर्वा।
तदतिविशदचित्तैर्लभ्यतेऽङ्गेऽपि तत्त्वं,
गुणगुरुगुरुपादाम्भोजसेवाप्रसादात्।। ८७।।[१]

---

१. योगीन्द्रदेव : अमृताशीति, छन्द ५८

इस कलश में कहते हैं कि निर्विकल्पक आत्मा में निर्वाण सदा विद्यमान है – (रोला)

अनुपम गुण से शोभित निर्विकल्प आतम में।
अक्षविषमवर्तन तो किंचित्मात्र नहीं है।।
भवकारक गुणमोह आदि भी जिसमें न हों।
उसमें निजगुणरूप एक निर्वाण सदा है।। ३०० ।।

ॐ ह्रीं निर्विकल्पात्मस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५६।।

अब इस गाथा में भी उसी बात को आगे बढ़ा रहे हैं कि परमपारिणामिक–भावरूप परमतत्त्व ही निर्वाण है –

(हरिगीत)

कर्म अर नोकर्म चिन्ता आर्त्त रौद्र नहीं जहाँ।
ध्यान धरम शुकल नहीं निर्वाण जानो है वहाँ।। १८१ ।।

ॐ ह्रीं परमतत्त्वस्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५७।।

इस कलश में ज्ञानपुंज परम ब्रह्म का स्वरूप बताते हैं –

(रोला)

जिसने घाता पापतिमिर उस शुद्धातम में।
कर्म नहीं हैं और ध्यान भी चार नहीं हैं।।
निर्वाण स्थित शुद्ध तत्त्व में मुक्ति है वह।
मन–वाणी से पार सदा शोभित होती है।। ३०१ ।।

ॐ ह्रीं परमब्रह्मस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४५८।।

(मंदाक्रांता)

यस्मिन् ब्रह्मण्यनुपमगुणालंकृते निर्विकल्पे–
ऽक्षानामुच्चैर्विविधविषमं वर्तनं नैव किंचित्।
नैवान्ये वा भविगुणगणाः संसृतेर्मूलभूताः
तस्मिन्नित्यं निजसुखमयं भाति निर्वाणमेकम्।। ३००।।

(गाथा)

णवि कम्मं णोकम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।
णवि धम्मसुक्कझाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। १८१।।

(मंदाक्रांता)

निर्वाणस्थे प्रहतदुरितध्वान्तसंघे विशुद्धे
कर्माशेषं न च नच पुनर्ध्यानकं तच्चतुष्कम्।
तस्मिन्सिद्धे भगवति परंब्रह्मणि ज्ञानपुंजे
काचिन्मुक्तिर्भवति वचसां मानसानां च दूरम्।। ३०१।।

अब इस गाथा में निर्वाण अर्थात् सिद्ध भगवान का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

अरे केवलज्ञानदर्शन नंतवीरजसुख जहाँ।
अमूर्तिक अर बहुप्रदेशी अस्तिमय आतम वहाँ।। १८२ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमात्मनः स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५९।।

इस कलश में सिद्ध भगवान का स्वरूप बताते हैं –

(रोला)

बंध–छेद से नित्य शुद्ध प्रसिद्ध सिद्ध में।
ज्ञानवीर्यसुखदर्शन सब क्षायिक होते हैं।।
गुणमणियों के रत्नाकर नित शुद्ध शुद्ध हैं।
सब विषयों के ज्ञायक दर्शक शुद्ध सिद्ध हैं।। ३०२ ।।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठीस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४६०।।

अब इस गाथा में कहते हैं कि निर्वाण ही सिद्धत्व है और सिद्धत्व ही निर्वाण है –

(हरिगीत)

निर्वाण ही सिद्धत्व है सिद्धत्व ही निर्वाण है।
लोकाग्र तक जाता कहा है कर्मविरहित आतमा।। १८३ ।।

ॐ ह्रीं निर्वाणस्य सिद्धत्वस्य च स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६१।।

(गाथा)

विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलं विरियं।
केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं।। १८२ ।।

(मंदाक्रांता)

बन्धच्छेदाद्भगवति पुनर्नित्यशुद्धे प्रसिद्धे
तस्मिन्सिद्धे भवति नितरां केवलज्ञानमेतत्।
दृष्टिः साक्षादखिलविषया सौख्यमात्यंतिकं च
शक्त्याद्यन्यद्गुणमणिगणं शुद्धशुद्धश्च नित्यम्।। ३०२ ।।

(गाथा)

णिव्वाणमेव सिद्धा सिद्धा णिव्वाणमिदि समुद्दिट्ठा।
कम्मविमुक्को अप्पा गच्छइ लोयग्गपज्जंतं।। १८३ ।।

इसमें मुक्ति एवं मुक्तजीव के विषय में कथन करते हैं –

(रोला)

जिनमत संमत मुक्ति एवं मुक्तजीव में।
हम युक्ति आगम से कोई भेद न जाने।।
यदि कोई भवि सब कर्मों का क्षय करता है।
तो वह परमकामिनी का वल्लभ होता है।। ३०३।।

ॐ ह्रीं मुक्ति-मुक्तजीवस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४६२।।

अब इस गाथा कहते हैं कि जहाँ तक धर्मद्रव्य है, जीव और पुद्गलों का गमन वहीं तक है – (हरिगीत)

जीव अर पुद्गलों का बस वहाँ तक ही गमन है।
जहाँ तक धर्मास्ति है आगे न उसका गमन है।। १८४ ।।

ॐ ह्रीं धर्मद्रव्यसद्भावे जीव-पुद्गलानां गमनप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६३।।

इस कलश में जीव-पुद्गलों के ऊर्ध्वगमन के विषय में बताते हैं –

(रोला)

तीन लोक के शिखर सिद्ध स्थल के ऊपर।
गति हेतु के कारण का अभाव होने से।।
अरे कभी भी पुद्गल जीव नहीं जाते हैं।
आगम में यह तथ्य उजागर किया गया है।। ३०४ ।।

ॐ ह्रीं जीव-पुद्गलयोः ऊर्ध्वगमनत्वप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६४।।

(मालिनी)

अथ जिनमतमुक्तेर्मुक्तजीवस्य भेदं
क्वचिदपि न च विद्मो युक्तितश्चागमाच्च।
यदि पुनरिह भव्यः कर्म निर्मूल्य सर्वं
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। ३०३।।

(गाथा)

जीवाण पुग्गलाणं गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थी।
धम्मत्थिकायभावे तत्तो परदो ण गच्छंति।। १८४ ।।

(अनुष्टुभ्)

त्रिलोकशिखरादूर्ध्वं जीवपुद्गलयोर्द्वयोः।
नैवास्ति गमनं नित्यं गतिहेतोरभावतः।। ३०४ ।।

इस गाथा में नियम और उसके फल का उपसंहार करते हैं –

(हरिगीत)

नियम एवं नियमफल को कहा प्रवचनभक्ति से।
यदी विरोध दिखे कहीं समयज्ञ संशोधन करें।। १८५ ।।

ॐ ह्रीं नियमस्य तत्फलस्य च स्वरूपप्रकाशक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६५।।

इस कलश में कहते हैं कि यह शास्त्र भव्यजीवों को मुक्तिमार्ग दिखाने वाला है –

(रोला)

नियमसार अर तत्फल यह उत्तम पुरुषों के।
हृदय कमल में शोभित है प्रवचन भक्ति से।।
सूत्रकार ने इसकी जो अद्भुत रचना की।
भविकजनों के लिए एक मुक्तीमारग है।। ३०५ ।।

ॐ ह्रीं मुक्तिमार्गस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४६६।।

इस गाथा में यह अनुरोध किया जा रहा है कि निन्दकों की बात पर ध्यान देकर इसके अध्ययन से विरक्त मत हो जाना –

(हरिगीत)

यदि कोई ईर्ष्याभाव से निन्दा करे जिनमार्ग की।
छोड़ो न भक्ति वचन सुन इस वीतरागी मार्ग की।। १८६ ।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६७।।

(गाथा)

णियमं णियमस्स फलं णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीए।
पुव्वावरविरोधो जदि अवणीय पूरयंतु समयण्हा।। १८५।।

(मालिनी)

जयति नियमसारस्तत्फलं चोत्तमानां
हृदयसरसिजाते निर्वृतेः कारणत्वात्।
प्रवचनकृतभक्त्या सूत्रकृद्भिः कृतो यः
स खलु निखिलभव्यश्रेणिनिर्वाणमार्गः।। ३०५ ।।

(गाथा)

ईसाभावेण पुणो केई णिंदंति सुंन्दरं मग्गं।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्तिं मा कुणह जिणमग्गे।। १८६ ।।

इस कलश में कहते हैं कि जैनदर्शन एकमात्र शरणभूत है –

(हरिगीत)

देहपादपव्यूह से भयप्रद बसें वनचर पशु।
कालरूपी अग्नि सबको दहे सूखे बुद्धिजल।।
अत्यन्त दुर्गम कुनयरूपी मार्ग में भटकन बहुत।
इस भयंकर वन विषैं है जैनदर्शन इक शरण।। ३०६ ।।

ॐ ह्रीं जैनदर्शनशरणस्वरूपप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६८।।

इस कलश में नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं –

(हरिगीत)

सम्पूर्ण पृथ्वी को कंपाया शंखध्वनि से आपने।
संपूर्ण लोकालोक है प्रभु निकेतन तन आपका।।
हे योगि! किस नर देव में क्षमता करे जो स्तवन।
अती उत्सुक भक्ति से मैं कर रहा हूँ स्तवन।। ३०७।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरनेमिनाथ-स्तुतिप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६९।।

(शार्दूलविक्रीडित)

देहव्यूहमहीजराजिभयदे दुःखावलीश्वापदे
विश्वाशातिकरालकालदहने शुष्यन्मनीयावने।
नानादुर्णयमार्गदुर्गमतमे दृङ्मोहिनां देहिनां
जैनं दर्शनमेकमेव शरणं जन्माटवीसंकटे।। ३०६ ।।
लोकालोकनिकेतनं वपुरदो ज्ञानं च यस्य प्रभो-
स्तं शंखध्वनिकंपिताखिलभुवं श्रीनेमितीर्थेश्वरम्।
स्तोतुं के भुवनत्रयेऽपि मनुजाः शक्ताः सुरा वा पुनः
जाने तत्स्तवनैककारणमहं भक्तिर्जिनेऽत्युत्सुका।। ३०७ ।।

अब इस गाथा में आचार्य कहते हैं कि मैंने नियमसार नामक ग्रन्थ स्वयं की अध्यात्म भावना के पोषण के लिए लिखा है –

(हरिगीत)

जान जिनवरदेव के निर्दोष इस उपदेश को।
निज भावना के निमित मैंने किया है इस ग्रन्थ को।। १८७ ।।

ॐ ह्रीं निजभावनाप्रेरक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४७०।।

इस कलश में कहते हैं कि इस शास्त्र में प्रतिपादित मर्म को धारण करने वाला मुक्ति प्राप्त करता है –

(हरिगीत)

सुकविजन पंकजविकासी रवि मुनिवर देव ने।
ललित सूत्रों में रचा इस परमपावन शास्त्र को।।
निज हृदय में धारण करे जो विशुद्ध आतमकांक्षी।
वह परमश्री वल्लभा का अती वल्लभ लोक में।। ३०८ ।।

ॐ ह्रीं नियमसारफलप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४७१।।

इन तीन कलशों में पद्मप्रभमलधारिदेव अपने मन की भावना व्यक्त करते हैं –

(हरिगीत)

पद्मप्रभमलधारि नामक विरागी मुनिदेव ने।
अति भावना से भावमय टीका रची मनमोहनी।।

(गाथा)

णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं ।। १८७ ।।

(मालिनी)

सुकविजनपयोजानन्दिमित्रेण शस्तं
ललितपदनिकायैर्निर्मितं शास्त्रमेतत्।
निजमनसि विधत्ते यो विशुद्धात्मकांक्षी
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः।। ३०८ ।।

पद्मसागरोत्पन्न यह है उर्मियों की माल जो।
कण्ठाभरण यह नित रहे सज्जनजनों के चित्त में।। ३०९ ।।

(दोहा)

यदि इसमें कोइ पद लगे लक्षण शास्त्र विरुद्ध।
भद्रकवि रखना वहाँ उत्तम पद अविरुद्ध।। ३१० ।।

(हरिगीत)

तारागण से मण्डित शोभे नील गगन में।
अरे पूर्णिमा चन्द्र चाँदनी जबतक नभ में।।
हेयवृत्ति नाशक यह टीका तबतक शोभे।
नित निज में रत सत्पुरुषों के हृदय कमल में।। ३११ ।।

ॐ ह्रीं पद्मप्रभमलधारिदेवस्य भावनाप्ररूपक श्रीनियमसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४७२।।

जयमाला

(दोहा)

परमावश्यकभाव अर शुद्धभाव अधिकार।
की जयमाला में कहें अधिकारों का सार।। १ ।।

(हरिगीत)

जो रहें शुधभाव में वे श्रमण अवश कहे गये।
अर जो शुभाशुभभाव में रे वे श्रमण हैं अन्यवश।।
द्रव्य गुण पर्याय के जो विकल्पों में लीन हों।
वे भी विकल्पातीत न बस इसलिये हैं अन्यवश।। २ ।।

(अनुष्टुभ्)

पद्मप्रभाभिधानोद्घसिन्धुनाथसमुद्भवा।
उपन्यासोर्भिमालेयं स्थेयाच्चेतसि सा सताम्।। ३०९ ।।
अस्मिन् लक्षणशास्त्रस्य विरुद्धं पदमस्ति चेत्।
लुप्त्वा तत्कवयो भद्राः कुर्वन्तु पदमुत्तमम्।। ३१० ।।

(वसंततिलका)

यावत्सदागतिपथे रुचिरे विरेजे तारागणैः परिवृतं सकलेन्दुबिंबम्।
तात्पर्यवृत्तिरपहस्तितहेयवृत्तिः स्थेयात्सतां विपुलचेतसि तावदेव।। ३११ ।।

छोड़कर परभाव सब निज आतमा में लीन हों।
वे स्ववश हैं बस इसलिये ही उन्हें आवश्यक कहें।।
जो रहें आत्मस्वभाव में शुद्धोपयोगी सन्त वे।
हैं परम आवश्यक अरे उन वीतरागी सन्त के।। ३।।

अरे भाई! इस जगत में भिन्न रुचि के जीव हैं।
और उनके भाव भी तो अरे अनेक प्रकार हैं।।
अतः वाद-विवाद में न उलझना ही ठीक है।
किसी से भी उलझना तो ठीक होता ही नहीं।। ४।।

अरे श्रुतसागर मुनी ने मंत्रियों से मार्ग में।
उलझकर क्या पा लिया था व्यर्थ वाद-विवाद में।।
इसी कारण सात सौ मुनिराज संकट में पड़े।
करो ऐसे काम क्यों जो व्यर्थ पछताना पड़े।। ५।।

ज्यों गुप्त धन को प्राप्त कर निज वतन में चतुराई से।
सब जगत जन हैं भोगते एकान्त में चुपचाप ही।।
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञान निधि को गुप्त रहकर भोगते।
पर प्रदर्शन करते नहीं भोगें सदा चुपचाप ही।। ६।।

जो सदा उलझे रहें लौकिकमार्ग के जंजाल में।
वे सन्त उलझे रहें नित ही विकल्पों के जाल में।।
लौकिकजनों वत रहें उलझे पुण्य एवं पाप में।
वे रहें नित संताप में वे नहीं अपने आप में।। ७।।

जो नहीं अपने आपमें वे जगत में उलझे रहें।
जो आतमा में आगये वे नहीं उलझें जगत में।।
जो जानते पहिचानते व ध्यान आतम का करें।
वे सन्तजन आ गये हैं रे आतमा में आत्मन्।। ८।।

शुद्धोपयोगी सन्त आतम ज्ञान में श्रद्धान में।
निज आतमा में जम रहे रम रहे आतम ध्यान में।।
संयोग में उलझें नहीं अर विकल्पों से पार हैं।
वे असंयोगी निर्विकल्पक भव-जलधि से पार हैं।। ९।।

असंयोगी निर्विकल्पक रहें आतमध्यान में।
शुद्धोपयोगी कहें उनको वीतरागी मार्ग में।।
वीतरागी मार्ग ही है मुक्ति मारग लोक में।
दिव्यध्वनि में समागत जिनमार्ग के आलोक में।। १०।।

इस वीतरागी मार्ग की यदि कोई ईर्ष्याभाव से।
निन्दा करे मिथ्यात्व तीव्रकषाय के आवेग में।।
उसे सुनकर भव्यजन इस मार्ग को न छोड़ना।
यदि चाहते हो मुक्ति तो इससे न मुख को मोड़ना।। ११।।

ॐ ह्रीं श्री निश्चयपरमावश्यक-शुद्धोपयोगअधिकाराभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अरे शुद्ध उपयोग यह परमावश्यक भाव।
परमधरम यह एक ही है यह परमस्वभाव।। १२।।
एकमात्र इस भाव से होते हैं सब सिद्ध।
एकमात्र आराध्य यह जग में परम प्रसिद्ध।। १३।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

महा जयमाला

(दोहा)

अरे स्वयं के लिये ही लिखा गया जो ग्रन्थ।
नियमसार वह ग्रन्थ है पढ़ें सभी निर्ग्रन्थ।। १ ।।

निर्ग्रन्थों के मार्ग का करे विविध व्याख्यान।
सन्तों के आचरण का है इसमें आख्यान।। २ ।।

(वीर)

नियमसार की अद्भुत रचना कुन्दकुन्द करकमलों से।
हुई हमारे भाग्य जगे हम नमस्कार करते मन से।।
इसमें कारणपरमातम का जो स्वरूप समझाया है।
वह अनुपम है, सुन्दरतम है हम सब के मन भाया है।। ३ ।।

इसके आश्रय से परमातम का कार्य सिद्ध हो जाता है।
आतम परमातम बन जाता अरहंत-सिद्ध हो जाता है।।
इसमें अपनापन सम्यक् है रचना-पचना है मुक्तिमार्ग।
इसमें ही नित्य जमें रहना मुक्ति है एवं मुक्तिमार्ग।। ४।।

कारणपर्याय की चर्चा भी अद्भुत अत्यन्त निराली है।
निज आतम के अभिलाषी को आनन्दित करने वाली है।।
जो सुनता है जो पढ़ता है आश्चर्यचकित हो जाता है।
पर भाग्यहीन नर इस जग में इससे वंचित रह जाता है।। ५।।

इस नियमसार की विषयवस्तु बारह अधिकारों में विभक्त।
अधिकारों के प्रतिपादन में निश्चयनय रहता एक मुख्य।।
यथायोग्य व्यवहार निरूपण भी होता है जहाँ-तहाँ।
पर परमशुद्धनिश्चयनय का ही होता है साम्राज्य यहाँ।। ६।।

शुद्धभाव की चर्चा करते परमपारणमिक भावों को।
एकमात्र उपादेय कहा अर हेय बताया बाकी को।।
क्षायिक को भी हेय कहा है और शेष को जाने दो।
क्योंकि जो पर्यायरूप हैं उन्हें नहीं अपनापन दो।। ७ ।।

पर्यायों में अपनापन तो सम्यक्भाव नहीं होता।
एक त्रिकाली द्रव्यभाव में अपनापन सम्यक् होता।।
एक त्रिकाली द्रव्यभाव ही अपना है परमातम है।
इसे छोड़कर अन्य न कोई अपना है परमातम है।। ८ ।।

अपने लिये अपन ही केवल कारण हैं परमातम हैं।
अधिक कहें क्या इसीलिये तो हम कारणपरमातम हैं।।
इस कारणपरमातम में ही अपनापन थापित करना।
इसमें ही तन्मय हो जाना इसमें ही है जमना–रमना।। ९ ।।

यह ही है सर्वस्व हमारा यही हमारी अनुपम निधि।
नहीं और कुछ करना है अब यही मुक्तिमारग की विधि।।
मैं तो एकमात्र ज्ञाता हूँ मुझे नहीं कुछ भी करना।
बातें बहुत हो चुकी अब तो मुझे नहीं कुछ भी कहना।। १० ।।

आधि–व्याधि एवं उपाधि से रहता है जो दूर सदा।
दूर दूसरों के झगड़ों से अर समाधिरत रहे सदा।।
स्वयं स्वयं में ही रत रहना ही समाधि का सम्यक् रूप।
अरे विकल्पातीत अनोखी यह होती है आत्मस्वरूप।। ११ ।।

निज आतम को छोड़ सभी से जिसका होय परायापन।
समताभाव सभी से जग में पर अपने में अपनापन।।
अर अपना ही ध्यान निरन्तर पर जाने सारे जग को।
पर जग से सम्बन्ध नहीं निज जाने केवल अपने को।। १२ ।।

(हरिगीत)

जिसतरह दीपक स्वयं को अर अन्य को द्योतित करे।
बस उस तरह ही आतमा भी स्व-पर को द्योतित करे।।
जाने स्व-पर को आतमा अर जानने में आ रहा।
सभी चेतन द्रव्य से यह स्वयं जाना जा रहा।। १३ ।।

प्रतिक्रमण आदि भाव सब परमार्थ से हैं ध्यानमय।
इसलिये ही सब समा जाते आतमा के ध्यान में।।
भूमिका अनुसार होते भाव शुभ सद् आचरण।
इस शास्त्र में इन सभी का वर्णन किया विस्तार से।। १४ ।।

सद्गुणों में अनुराग को ही भक्ति कहते हैं सदा।
निजपर गुणों से प्रभावित वात्सल्य में रहना सदा।।
है भक्ति निश्चयभक्ति तो बस स्वयं की ही भक्ति है।
स्वयं में ही समा जाना स्वयं की ही शक्ति है।। १५ ।।

किन्तु नय व्यवहार से परमात्मा का संस्तवन।
सर्वज्ञता का स्तवन आनन्द का अद्भुत कथन।।
दिव्यध्वनि में समागत रे वीतरागी तत्त्व का।
कथन, मंथन, स्मरण सब भक्ति के ही रूप हैं।। १६ ।।

अवश करने योग्य हैं जो भाव वे ही हैं अवश।
उन्हें करना जरूरी है अतः आवश्यक कहे।।
एक शुध उपयोग ही है सिद्ध होने के लिये।
अतः उसको दिव्यध्वनि में परम आवश्यक कहा।। १७ ।।

(दोहा)

परमावश्यक कार्य है एकमात्र निजध्यान।
नियमसार के पाठ से होता सम्यग्ज्ञान।। १८ ।।

ॐ ह्रीं श्री नियमसारपरमागमाय महाजयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

नियमसार के ज्ञान से हो भव का अवसान।
इसप्रकार पूरण हुआ पूजन और विधान।। १९ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नियमसार स्तुति

(मानव)

रे नियमसार सा अद्‌भुत ....

रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। १ ।।

इसमें कारण परमातम का सम्यक् रूप बताया।
इसमें ही निज आतम का सच्चा स्वरूप समझाया।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। २ ।।

उपशम क्षयोपशम भावों को इसमें हेय बताया।
अर क्षायिकभावों को भी ना उपादेय बतलाया।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ३ ।।

इन भावों में अपनापन तो किया नहीं जा सकता।
मैं एक त्रिकाली ध्रुव हूँ इन रूप नहीं हो सकता।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ४ ।।

प्रतिक्रमणादि भावों को निश्चयनय से समझाया।
इन भावों को निश्चय से है ध्यान रूप बतलाया।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ५ ।।

भक्ति समाधि को भी तो है ध्यान रूप बतलाया।
शुद्धोपयोग तो है ही यह जिनवर ने बतलाया।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ६ ।।

निज आत्मध्यान को जिन ने परमावश्यक बतलाया।
इसतरह ध्यान में भविजन सबकुछ ही आन समाया।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ७ ।।

हम सभी आतमा जानें निज आतम को पहिचानें।
निज आतम ध्यान लगावें निज आतम में रम जावें।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ८ ।।

जो पढ़े पढ़ावे इसको इसका स्वाध्याय करावे।
पूजन करवाये इसकी वह मुक्तिमार्ग पा जावे।।
रे नियमसार सा अद्‌भुत सद्‌ग्रन्थ नहीं है दूजा।
स्वाध्याय करें हम प्रतिदिन हम करते इसकी पूजा।। ९ ।।

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००	५०. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५	१२५.००	५१. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००
७. समयसार का सार	३०.००	५२. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	२०.००
८. गाथा समयसार	१०.००	५३. मैं कौन हूँ	११.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००	५४. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	१०.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३	९५.००	५५. निमित्तोपादान	७.००
१३. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन	२०.००	५६. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
१४. प्रवचनसार का सार	३०.००	५७. मैं स्वयं भगवान हूँ	५.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका	५०.००	५८-५९. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति	४.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३	७०.००	६०. शाकाहार	५.००
१८. छहढाला का सार	१५.००	६१. भगवान ऋषभदेव	४.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	३०.००	६२. तीर्थंकर भगवान महावीर	३.००
२०. वैराग्य महाकाव्य	२५.००	६३. चैतन्य चमत्कार	४.००
२१. समयसार महामण्डल विधान	२५.००	६४. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
२२. समयसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	३५.००	६५. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
२३. प्रवचनसार महामण्डल विधान	२०.००	६६. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
२४. प्रवचनसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	२०.००	६७. अनेकान्त और स्याद्वाद	३.००
२५. नियमसार महामण्डल विधान	२५.००	६८. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	६.००
२६. नियमसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	३०.००	६९. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
२७. बढ़ते कदम	१०.००	७०. जिनवरस्य नयचक्रम	१०.००
२८. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	१५.००	७१. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	१०.००
२९. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००	७२. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
३०. परमभावप्रकाशक नयचक्र	४०.००	७३. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
३१. चिन्तन की गहराइयाँ	३०.००	७४. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
३२. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	२०.००	७५. समयसार पद्यानुवाद	३.००
३३. धर्म के दशलक्षण	२०.००	७६. योगसार पद्यानुवाद	१.००
३४. क्रमबद्धपर्याय	२०.००	७७. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
३५. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध)	२०.००	७८. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
३६. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध)	१०.००	७९. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
३७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण)	३०.००	८०. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
३८. बिखरे मोती	१६.००	८१. नियमसार पद्यानुवाद	२.५०
३९. सत्य की खोज	२५.००	८२. नियमसार कलश पद्यानुवाद	५.००
४०. अध्यात्म नवनीत	१५.००	८३. सिद्धभक्ति	१०.००
४१. आप कुछ भी कहो	१५.००	८४. अर्चना जेबी	१.५०
४२. आत्मा ही है शरण	१५.००	८५. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	५.००
४३. सुक्ति-सुधा	१८.००	८६. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	५.००
४४. बारह भावना : एक अनुशीलन	१६.००	८७-८८. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३	८.००
४५. दृष्टि का विषय	१०.००	८८-९०. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३	१५.००
४६. गागर में सागर	७.००	९१-९२. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २	१२.००
४७. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१२.००	९३. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि	३.००
४८. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	१५.००	९४. समाधिमरण या सल्लेखना	५.००
४९. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००	९५. ये है मेरी नारियाँ	५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ)	१५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कृर्तत्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन	३०.००
३. डॉ. हुँकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्न अरुणकुमार जैन	१२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बंसल	२५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य	५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल	५.००
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्न सीमा जैन	२५.००

प्रकाशनाधीन

१. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्न नीतू चौधरी
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ह्न शिखरचन्द जैन
३. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्न ममता गुप्ता